PUNJABI UNIVERSITY PATIALA

बी॰ ए॰ भाग-तृतीय

हिन्दी (सैमेस्टर-V)

हिन्दी साहित्य

एकांश संख्या : 1, 2, 3

डिस्टेंस एजुकेशन विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

विषय–सूची

एकांश संख्या 1 : मध्या

पाठ संख्या : 1.1 कबीर

1.2 सूरदास

1.3 तुलसीदास

एकांश संख्या 2 : निबन्ध संग्रह : (निबन्ध परिवेश)

पाठ संख्या : 2.1 अंग्रेज़ स्तोत्र – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

2.2 नयनों की गंगा – प्रो० पूरन सिंह

2.3 कछुआ धर्म – पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

2.4 ठेले पर हिमालय – डा० धर्मवीर भारती

2.5 राघवः करुणो रसः – श्री कुबेरनाथ राय

2.6 काव्य का स्वरूप, प्रयोजन एवं भेद

2.7 महाकाव्य के लक्षण

2.8 शब्द शक्तियां

2.9 छंद परिचय (10) लक्षण तथा उदाहरण सहित

पाठ संख्या : 1.1 **लेखिका : डॉ0 कुलदीप कौर**

कबीर

इकाई की रूपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1 प्रस्तावना

1.1.2 कबीर का व्यक्तित्व और कृतित्व

1.1.3 कबीर की काव्यगत विशेषताएं

1.1.4 सप्रसंग व्याख्या

1.1.5 लघु प्रश्नोत्तर

1.1.6 सहायक पुस्तकें

1.1.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.1.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ में भक्तिकाल के जन–कवि कबीर से सम्बंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

* कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
* कबीर की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
* काव्य की व्याख्या कर सकेंगे।

1.1.1 प्रस्तावना :

संत कबीर उस समय अवतरित हुए जब मध्यकाल अंधकार से घिरा हुआ था, अपनी वाणी के माध्यम से कबीर ने कुरीतियों व आडम्बरों के अंधेरे को दूर करने का प्रयत्न किया जिसमें वह सफल भी हुए। चौतरफा मार झेलती जनता के लिए कबीर वाणी राहत का साधन बन कर आई। मानवतावादी कबीर समाज में व्याप्त संकीर्ण भावनाओं के विरुद्ध थे तथा वह इस पर करारी चोट भी करने से नहीं चूकते थे। उन्होंने एकता की भावना की बात करते हुए सच्चे मार्ग को दर्शाने का प्रयास किया। वास्तव में वह इस मध्ययुग के क्रांति पुरुष थे।

1.1.2 कबीर का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

मध्ययुगीन हिंदी निर्गुण काव्यधारा के प्रवर्तक संत कवि कबीरदास के जन्म को लेकर प्रायः विद्वानों में मतभेद द्रष्टव्य होता है। आचार्य शुक्ल, डॉ0 द्विवेदी आदि विद्वान सम्वत् 1456 को ही कबीर का जन्म स्वीकार करते हैं। उनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रख्यात है–

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ गए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी को प्रगट भए।।
घन गरजे दामिनि दमके, बूँदे बरसे झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिलै, तहै कबीर भानु प्रकट भए।।

उपरोक्त पद्य के अनुसार कबीर का जन्म सम्वत् 1455 ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को सोमवार के दिन हुआ। लेकिन ज्योतिष गणना के अनुसार यह सम्वत् 1456 में पड़ता है। इण्डियन क्रोनेलॉजी के आधार पर उनका जन्म सम्वत् 1455 ही स्वीकार किया गया है। कबीर के जन्म को लेकर कई किंवदन्तियां प्रचलित हैं। कुछ एक का कहना है कि एक विधवा ब्राह्मणी ने लोक–लाजवश अपने नवजात शिशु को काशी के लहरतारा नामक तालाब के निकट फेंक दिया था, जिसका पालन पोषण निःसंतान जुलाहा दम्पती नीरू और नीमा ने किया। इस बात का समर्थन कबीर का स्वयं को जुलाहा कहने से भी हो जाता है। कबीर गृहस्थी थे। इनकी पत्नी का नाम लोई था। परन्तु डॉ0 रामकुमार वर्मा ने इनकी एक अन्य पत्नी भी स्वीकार की है जिसका नाम धनिया या रमजनिया था। कमाल और कमाली इनके पुत्र व पुत्री थे। कबीर के गुरू को लेकर भी अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। एक के अनुसार रामानंद ने कबीर को राम नाम का गुरूमंत्र तब दिया जब वह प्रातः ही स्नान के लिए जा रहे थे। कबीर वहीं किनारे पर बनी सीढ़ियों पर लेट गए जिससे कि स्वामी जी को अंधेरे में दिखाई न पड़ें, पैर पड़ने पर रामानंद के मुख से 'राम–राम' निकल पड़ा और कबीर ने इसे गुरूमंत्र समझकर ग्रहण किया किन्तु कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न हो गए थे। कबीर परम संतोषी, उदार, निर्भीक, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक, बाह्यडम्बर–विरोधी तथा क्रांतिकारी सुधारक थे। वह मस्तमौला, लापरवाह फक्कड़ फकीर थे। वह सिकन्दर लोदी के सामने झुके नहीं, हिन्दू और मुसलमानों के प्रबल रोष ने उन्हें तनिक भी विचलित नहीं किया। कहते हैं कि वह 120 वर्ष तक जीवित रहे, सम्वत् 1575 में मगहर में देहांत हुआ।

कृतित्व :

कबीरदास के नाम वैसे तो कई रचनाएं मिलती हैं किन्तु यह प्रामाणिक सिद्ध नहीं हुई। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज के आधार पर कबीर की लगभग 150 रचनाएं बताई जाती है परन्तु इनमें भाषा–शैली की एकरूपता की कमी है। वास्तव में कबीर मौखिक प्रवचनों में ही विश्वास रखते थे, उनके हाथ की लिखी कोई पुस्तक नहीं है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वे निरक्षर थे। जैसा कि कबीर ने स्वयं एक साखी में कहा है–

मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।।

क्योंकि कबीर अनपढ़ थे इसलिए उनकी वाणी का संकलन उनके शिष्यों ने किया होगा। कबीर वाणी लोकप्रिय हो गई थी शायद इसीलिए श्रोताओं ने अपने कथन भी उसमें जोड़ दिए। परन्तु इतना होने पर भी उनकी रचना 'बीजक' सबसे विश्वसनीय ग्रंथ स्वीकारी गई है। इसमें तीन भाग हैं—साखी, सबद और रमैनी। इनमें से साखी में सामाजिक भावबोध व आध्यात्मिक भावबोध प्रधान रूप से उकेरा गया है। सबद के अंतर्गत आध्यात्मिक भावबोध प्रधान है, इसमें धार्मिक समन्वय पर बल दिया गया है। कबीर से पूर्व रमैनी बहुत कम मिलती है। वैसे दोहा—चौपाई छन्द जो रमैणी में प्रयुक्त होते हैं, वे पुराने हैं। कबीर बीजक के सम्पादक के अनुसार रमैणी रामणी शब्द का रूपांतर है तथा वे मानते हैं कि इसका विषय जीवात्मा की सांसारिक क्रीड़ाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है। अपने काव्य के माध्यम से कबीर ने समाज में नई लहर का प्रादुर्भाव किया। उनकी रचनाएँ 'गुरू ग्रंथ साहिब' में भी संकलित हैं जोकि सिख धर्म के अनुयायियों का सर्वमान्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ का संकलन सम्वत् 1661 में हुआ।

1.1.3 कबीर की काव्यगत विशेषताएँ :

कबीर को निर्गुण काव्यधारा के प्रवर्तक माना जाता है। वह भक्तिकाल के उन कवियों में से हैं जिन्होंने जन—भाषा में भक्ति का प्रकाश फैलाकर लोकमानस को बाह्यडम्बरों, पाखण्डों, अनाचार, अंधविश्वास आदि के घोर अंधेरे से बाहर निकालने का कार्य किया। कबीर की प्रेममयी वाणी ने जहाँ मानव मन को सार्थक मानव मूल्य से भर दिया, वहीं उनकी ओजस्वी वाणी मानसिक संकीर्णताओं के बंधन को तोड़ती द्रष्टव्य होती है। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :—

1. निर्गुण ईश्वर की उपासना : कबीर ईश्वर के निर्गुण रूप की उपासना में विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर एक है और वह निर्गुण निराकार हे। वह अजन्मा व अनाम है तथा कण—कण में समाया है। वह ही इस सारी सृष्टि का कर्ता है :—

''जाके मुँह माथा नहीं, नाही रूप कुरूप।
पहुंप बास ते पातरा, ऐसा तत अनूप।।''

2. गुरू की महिमा : सभी भक्तिकाल कवियों ने गुरू की महिमा का गुण—गान किया है। कबीर भी इस मत से अछूते नहीं रहे। उनकी दृष्टि में गुरू की महिमा अपार है। उसकी कृपा के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए वह गुरू को ईश्वर से भी बड़ा स्वीकार करते हैं। कबीर का कहना है कि ईश्वर के रूठने पर तो गुरू का सहारा प्राप्त हो सकता है किन्तु गुरू के रूठने पर तो गुरू का सहारा प्राप्त हो सकता है किन्तु गुरू के रूठने पर कोई सहारा नहीं मिल सकता —

''कबीर ते नर अंध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।''

3. समाज सुधारक : कबीर संत होने के साथ—साथ एक सच्चे समाज सुधारक भी थे। उन्होंने वर्ण—व्यवस्था, छुआछूत, ऊँच—नीच तथा अन्य ऐसी कुरीतियों का भरसक विरोध किया।

''जाति—पाति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।''

कबीर का मानना है कि सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं इसलिए वह सब एक समान हैं। उस समय समाज अनेक मतों एवं विश्वासों में बंटा हुआ था। विभिन्न प्रकार के धार्मिक अंधविश्वासों, बाह्याडम्बरों और मिथ्या प्रदर्शनों ने समाज को अपने जाल में फांस रखा था। यहाँ पर कबीर जप, तिलक, माला, चंदन आदि कर्म–काण्डों के विरुद्ध थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के इन आडम्बरों का कड़ा विरोध किया।

''कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।''

कबीर धर्म के नाम पर बाह्य विधि–विधानों को त्यागने और सार को ग्रहण करने के पक्ष में थे।

4. एकेश्वरवाद का समर्थन एवं बहुदेववाद का विरोध : कबीर ने अपनी वाणी के माध्यम से हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया इस कारण उन्होंने समाज में व्याप्त अवतारवाद, बहुदेववाद का जोरदार शब्दों में खण्डन किया। उनका मानना था कि यह मत ही समाज को भिन्न–भिन्न भागों में विभक्त करता है। इन बातों को ध्यान में रखकर कबीर ने एकेश्वरवाद पर बल दिया। उनका कहना है कि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है :–

''कस्तूरी कुंडल बसै, मृत ढूँढै बन माहिं
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जाने नाहिं।।''

कबीर के अनुसार 'राम और रहीम' 'कृष्ण और करीम' ईश्वर का एक ही रूप है।

5. भक्ति–भावना : कबीर निराकार ईश्वर में आस्था रखते थे इसलिए उनकी भक्ति भावना को निर्गुण से जोड़ा गया है। वह ईश्वर के प्रति अनन्य भाव से, बिना किसी शर्त आत्म–समर्पण को महत्व देते हैं। उन्होंने अहंकार, इच्छाओं और आशाओं के त्याग पर बल दिया है। उनकी भक्ति को मूलाधार प्रेम–भक्ति रही है। उनके अनुसार जिसने ईश्वर की भक्ति नहीं की, जिसने प्रेम का स्वाद नहीं लिया उस मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।

''कबीर प्रेम न चाखिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव।।''

6. नाम–स्मरण पर बल : कबीर कहते हैं कि ईश्वर के नाम–स्मरण में बड़ी शक्ति है। नाम–स्मरण से ही मुक्ति की राह सम्भव है। उनके अनुसार नाम–स्मरण से माया के बंधन टूट जाते हैं और भक्ति तथा मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है :–

''चरण कंवल चित्त लाइये, राम नाम गुन गाइ रे।
है कबीर संसा नहीं, भक्ति, मुक्ति गति पाह रे।।''

7. माया का विरोध : ज्ञानमार्गी कवियों ने माया को ईश्वर भक्ति और प्राप्ति में बाधक स्वीकार किया है। कबीर भी इसमें दो मत नहीं रखते हैं उन्होंने माया को महाठगनि स्वीकार करते हुए सतगुरू की कृपा से ही इससे बचने का उपाय माना है।

''माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले, बोले मधुर बानी।''

8. रहस्यवाद : कबीर की रहस्यवादी भावना ने उन्हें रहस्यवादी कवि होने का गौरव प्रदान किया है। प्रेम–मूलक भक्ति भावना और निर्गुण ब्रह्मवाद की उनकी वैयक्तिक साधना ने उनके काव्य में रहस्यवाद का प्रकाश फैलाया है। उन्होंने प्रेम की चरम परिणति वाम्पत्य प्रेम में देखी है। उन्होंने आत्मा को परमात्मा की पत्नी माना है जो पिया मिलन की आशा में विरह के क्षण भी भोगती है। परन्तु वास्तव में कबीर का रहस्यवाद वैराग्य से नहीं अपितु प्रेम और प्रीति की भावना से भरा पड़ा है। जब आत्मा का परमात्मा से तादम्य हो जाता है, दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तभी रहस्यवाद का आदर्श पूर्णता को प्राप्त करता है :–

''लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।''

9. भाषा–शैली : कबीर की भाषा का कोई एक रूप नहीं है, उनकी भाषा में राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, ब्रज तथा फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है वास्तव में उनकी भाषा जन–भाषा है। आचार्य शुक्ल ने इसको 'सुधक्कड़ी' भाषा कहा है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में कहलवा दिया।'' उन्होंने मुख्यतः दोहा, चौपाई और पद का प्रयोग किया है। उनके काव्य में कई राग–रागनियां भी द्रष्टव्य होती हैं। अलंकारों का सहज प्रयोग भी उनके काव्य में दिखाई देता है। उन्होंने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, अनुप्रास, विरोधाभास, दृष्टांत आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कबीर अपने समकालीन अन्य संत व सूफी कवियों से कई कारणों से पृथक् व अग्रणी थे। कबीर का सम्पूर्ण काव्य उनकी अनुभूतियों को आधार बनाकर जन–मानस को सही व सार्थक दिशा प्रदान करने का कार्य करता है। वह निर्गुण ईश्वर के माध्यम से समाज में फैली आपसी बाँट को समाप्त करना चाहते थे और समस्त समाज को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। उनका काव्य न केवल संत काव्य में अपितु समस्त हिंदी–साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

1.1.4 प्रसंग व्याख्या :

1. पीछे लागा जाइ था..दू–यू कूप पडत।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तक 'मध्या' में संकलित कबीर वाणी में से उद्धृत किया गया है। इस पद्यांशा में कबीर ने गुरु की महिमा की अभिव्यक्ति की कि गुरु ही भक्त की अन्तरात्मा से अज्ञान का पर्दा उठाकर रोशनी दिखा सकता है।

व्याख्या : कबीर जी कहते हैं कि मैं लोकाचार और वेदाचार का अंधाधुंध अनुसरण करता हुआ चला जा रहा था, परन्तु फिर मुझे गुरु मिला जिसने मेरी बुद्धि पर पड़े अंधकार को मिटाने के लिए दीपक रूपी ज्ञान को हाथ थमा दिया और मुझे रोशन कर दिया। इतना ही नहीं कबीर जी गुरु के अज्ञानी होने पर भी विचार करते हैं उनका कहना कि अगर गुरु ही मोह–माया में लिप्त है, अंधा है तो शिष्य तो उससे ज्यादा अंधा होगा, क्योंकि गुरु मार्ग नहीं बता पाता और अंत में दोनों ही नरक में जा गिरते हैं।

विशेष :
1. गुरु के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।
2. भाषा विषयानुकूल, सहज और सरल है।

2. कबीर प्रेम न चाषिया..................................ज्यूँ आया त्यूँ जाव।

सप्रसंग व्याख्या : प्रस्तुत पद्यांश में कबीर जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मनुष्य तूने ईश्वर प्रेम का अनुभव अभी किया, तुमने उस अनुभव का स्वाद नहीं लिया। तुम्हारी स्थिति तो उस अतिथि जैसी है जो सूने घर से जैसे का वैसा ही वापिस चला जाता है।

विशेष : 1. ईश्वर प्रेम से वंचित व्यक्ति की तुलना सूने घर से की गई है।

2. ईश्वर अनुराग के महत्त्व का प्रतिपादित किया है।

3. बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये..............................सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा।

सप्रसंग व्याख्या : प्रस्तुत पद कबीर की रचना पदावली में से लिया गया है। इस पद्यांश में कबीर प्रभु मिलन से प्रसन्न होते लिखते हैं। मैं बहुत दिनों अर्थात् जन्म के बाद ही जिस प्रभु से मैं बिछुड़ गई उनको मैंने घर पर बैठे ही पा लिया है। अब तो मैं उनके मंगलाचरण और राम स्मरण में ही अपना ध्यान लगा कर रखूँगी। उसके आने से मन मंदिर में उजाला हो गया है और मैं उसके साथ सो रही हूँ। मुझे जो मिला है उसका व्याख्यान नहीं किया जा सकता। मैंने कुछ नहीं किया यह उस प्रभु का बड़प्पन है जिसने मुझे सब कुछ दिया।

विशेष : 1. प्रस्तुत पद में कबीर ने परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी रूप में अभिव्यक्त किया है।

2. पति–सुख के माध्यम से आत्मा के आनन्द की बात की है।

1.1.5 लघु प्रश्न–उत्तर :

प्र. 1. कबीर की भक्ति–भावना के संदेश पर नोट लिखें।

उत्तर : कबीर निराकार ईश्वर में आस्था रखते थे इसलिए उनकी भक्ति भावना को निर्गुण से जोड़ा गया है। वह ईश्वर के प्रति अनन्य भाव से, बिना शर्त समर्पण को महत्व देते हैं। कबीर ने बुद्धि व हृदय पक्ष के समन्वय पर जोर दिया है जिससे संसार 'विश्वबंधुत्व' के सिद्धांत पर चलकर स्वस्थ समाज की स्थापना की जा सकती है।

प्र.2. कबीर की भाषा पर चर्चा करें।

उत्तर : कबीर की भाषा के सम्बन्ध विद्वानों में मतभेद द्रष्टव्य होता है। इनकी भाषा जन–भाषा है। उनकी भाषा में राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, ब्रज तथा फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग हुआ है। आचार्य शुक्ल ने इसको 'सधुक्कड़ी' भाषा हा है। कुछ विद्वान इसे 'पंचमेल खिचड़ी भाषा' कहते हैं तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर 'वाणी के डिक्टेटर' हैं।

1.1.6 सहायक पुस्तकें :

1. कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी।
2. कबीर का रहस्यवाद : डॉ0 रामकुमार वर्मा।
3. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बर दत बडथ्वाल।

1.1.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. कबीर एक सच्चे समाज–सुधारक थे इस पर अपने मत लिखें।
2. कबीर के रहस्यवाद पर नोट लिखें।
3. कबीर की विरह–भावना पर चर्चा कीजिए।
4. कबीर के राम पर अपने विचार रखें।

पाठ संख्या : 1.2 **लेखिका : डॉ0 कुलदीप कौर**

सूरदास

इकाई की रूपरेखा :

1.2.0 उद्देश्य

1.2.1 प्रस्तावना

1.2.2 सूरदास का व्यक्तित्व और कृतित्व

1.2.3 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1.2.4 सप्रसंग व्याख्या

1.2.5 लघु प्रश्न–उत्तर

1.2.6 सहायक पुस्तकें

1.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.2.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ से भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा की कृष्णमार्गी शाखा के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि सूरदास से सम्बंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात् :–

* सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
* सूरदास की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
* सूरदास के काव्य की व्याख्या कर सकेंगे।

1.2.1 प्रस्तावना :

भक्तिकालीन कृष्णमार्गी शाखा के प्रमुख कवि सूरदास वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन में अग्रणी रहे हैं। उनका समस्त काव्य लोकरंजन की भावना से ओत–प्रोत है। ब्रज संस्कृति तथा उससे जुड़े प्रसंगों की साहित्यिक झलकियां उनके काव्य का श्रृंगार बन कर उभरी हैं। वह अष्टछाप कवियों में भी सर्वोपरि स्वीकार किये गये हैं। सूरदास ने अपने काव्य के माध्यम से मानवीय भावों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उनके काव्य के अध ययन से उनके बहुश्रुत, अनुभव सम्पन्न, विवेकशील और चिंतनशील व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। कुछ विद्वान सूरदास को कृष्णभक्त हिंदी कवियों में शिरोमणि कवि के रूप में भी स्वीकारते हैं।

1.2.2 सूरदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

व्यक्तित्व :

सूरदास के जन्म को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार उनका जन्म सम्वत् 1535 में हुआ जबकि कुछ के अनुसार सम्वत् 1540 में। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार सूरदास जी स्वामी वल्लभाचार्य से आयु में दस दिन छोटे थे। इस प्रकार हम उनका जन्म सम्वत् 1535 से सम्वत् 1540 के बीच स्वीकार सकते हैं। इसी प्रकार उनके जन्म स्थान को लेकर भी विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् मथुरा के पास 'रूनकता' नामक गांव को तथा कुछ विद्वान् दिल्ली के पास सीही गांव तथा कुछ विद्वान गोपांचल, ग्वालियर के पास स्वीकार करते हैं। परन्तु अधिकतर विद्वान् उनका जन्म–स्थान सीही को ही स्वीकारते हैं। सूरदास के माता–पिता के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। उनके वंश को लेकर भी कई प्रकार के अनुमान लगाये गये अधिकतर विद्वानों ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण स्वीकार किया है। यह बात निर्विवाद है कि सूरदास नेत्र–विहीन थे किन्तु वह जन्मांध थे अथवा बाद में अंधे हुए थे, वह विवादाग्रस्त है। उनकी कविता में प्रकृति की शोभा और रूप वर्णन को देखते हुए इस धारणा की पुष्टि होती है कि इन्होंने जीवन और जगत् को अपनी आँखों से देखा था, इसलिए अनेक विद्वान् सूरदास की जन्मांध पर विश्वास नहीं करते हैं, परन्तु कई पद ऐसे मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि वह जन्म से अंधे थे–'सूरदास को कौन निहोरो नैनन हूँ कि हानि।'

अथवा 'सूर की बिरिया निठुर होइ बैठे जन्म अन्धकरयौ।'

'चौरासी वैष्णव की वार्ता' के अनुसार सूरदास अपने बहुत से सेवकों के साथ सन्यासी वेष में मथुरा के बीच गऊघाट पर रहा करते थे। यहीं उनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य से हुई। सूरदास वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होकर वहीं श्रीनाथ में मंदिर में कीर्तन करने लगे। वहीं पसौली नामक स्थान पर निवास करते थे तथा एक दिन भजन–कीर्तन करते समय आपका देहांत हो गया। इनकी मृत्यु का समय सम्वत् 1620 से 1640 माना गया है।

कृतित्व :

सूरदास द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या पच्चीस मानी गयी है, किन्तु इन रचनाओं में से अधिकतर अप्रामाणिक तथा कुछ सूरसागर का ही अंश हैं। सूरदास की तीन रचनाओं को ही प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है–सूरसागर, सूरसारावली तथा साहित्य लहरी परन्तु अंतिम दो रचनाओं की प्रामाणिकता को संदिग्ध दृष्टि से देखा गया है। सूरदास द्वारा सूरसागर उनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ है। यह एक गेय मुक्तक काव्य है जो श्रीमद्भागवत के समान इसमें भी बारह स्कंध हैं। यह ग्रंथ भागवत को आधार बनाकर लिखा गया परन्तु इसको भागवत का अनुवाद स्वीकार करना तर्कसंगत नहीं है। इसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का मार्मिक चित्रण है। श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप को विशेष रूप से दर्शाते हुए सूरदास ने वात्सल्य व श्रृंगार रस का विशेष रूप से ध्यान रखा है। इस ग्रंथ के अंतर्गत भ्रमरगीत के माध्यम से सगुण की निर्गुण पर विजय को भी दर्शाया गया है। सूरदास के काव्य में हिंदू संस्कृति में गृहस्थ जीवन तथा पूर्व–अवतार, विराट स्वरूप भगवान् कृष्ण का महिमामय चित्रण मिलता है। सूरदास की एक ही आशा और अभिलाषा है–कृष्ण–लीलागान।

सूरसागर : 'सूरसागर' में श्री कृष्ण की मधुर लीलाओं का विस्तारपूर्वक चित्रण किया गया है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ में श्री कृष्ण का लोकरंजक रूप भी दिखाई देता है। सूरसागर का सबसे महत्वपूर्ण एवं रोचक अंश 'भ्रमरगीत' है। भ्रमरगीत में वियोग श्रृंगार का चित्रण बहुत ही मार्मिक है।

सूरसारावली – 'सूरसारावली' में 1100 पद है। संग्रहकार ने पुस्तक के आरम्भ में लिख दिया है कि रचना सूर कृत है तथा यह सूरसागर का सार एवं उनके पदों के अनुक्रमणिका है। परन्तु उक्त ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात

होता है कि यह अनुक्रमणिका न होकर स्वतंत्र ग्रंथ है।

साहित्य लहरी – दृष्टकूट शैली लिखित रचना है इसे सूरसागर का अंश बताया गया है। इसमें सूरदास के वे पद हैं जिनमें नायिकाभेद, अलंकार एवं रस निरूपण है।

सूरदास के काव्य के तीन रूप हैं। विनय, बाल–लीला और श्रृंगार सम्बन्धी पद। सूरदास की प्रारम्भिक रचनाओं में दास्य–भाव की भक्ति मिलती है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन के बाद सूर के पदों में आत्मदीनता समाप्त हो गई और वह श्री कृष्ण को साकार रूप में भजने लगे। फिर उनकी भक्ति सख्य भाव की हो गई। उन्होंने कृष्ण के बाल्यकाल का अत्यंत सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रण किया है। स्वाभाविक चित्रण के साथ बच्चे का अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्रण सूर के वात्सल्य की दूसरी बड़ी विशेषता है। भ्रमरगीत के द्वारा सूरदास ने निर्गुण का खण्डन किया तथा सगुण का मण्डन। सूर का प्रकृति चित्रण नैसर्गिक और विशद है। वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्र में इन्होंने प्रकृति को उद्दीप्त रूप में ग्रहण किया। सूर काव्य में भक्ति, कविता और संगीत का सुन्दर समायोजन है। कृष्ण काव्य परम्परा में सूर बहुत अधिक महत्त्व के पात्र हैं। निम्न हम सूर के इन्हीं महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

जब हम सूरदास की चर्चा करते हैं तो काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सबसे महत्वपूर्ण नाम सूरदास का ही है। वे पहले भक्त थे और बाद में कवि इसलिए तो सर्वश्री द्वारकादास पारीख और प्रभुदयाल मित्तल के कहे शब्द उन पर शत्–प्रतिशत चरितार्थ होते हैं। ''यद्यपि सूरदास अपने काव्य महत्त्व के कारण हिन्दी कवियों के मुकुटमणि माने जाते हैं, तब भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। उनके काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे पहले भक्त हैं और बाद में कवि।''

'सूरसागर' सूरदास का एक ऐसा ग्रंथ है जिसके आधार पर उनकी कीर्ति पताका फहरा रही है। सूर के पद इतने परिष्कृत और अनुशासन बद्ध हैं कि वे किसी चली आती हुई गीत काव्य परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो पूर्ण विकास प्रतीत होते हैं। पद परम्परा भले ही उनके पहले से ही प्रचलित थी पर सूर के पदों में जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व ढल गया वह अन्यत्र नहीं मिलेगा। इनसे प्रभावित होकर ही तो इनकी मृत्यु के सम्बन्ध समय शोकविह्वल विट्ठलनाथ ने कहा था–''पुष्टिमार्ग का जहाज जात है सो जाको कुछ लेना हो सो लेत''

अर्थात् सूरदास पुष्टिमार्ग के जहाज़ हैं। अब उनके जाने का समय आ गया है उनसे जो कुछ लेना हो ले लो। इससे यही सिद्ध होता है कि सूरदास के समान अन्य कोई दूसरा नहीं।

सूर के काव्य की बात करें तो इनके काव्य में श्री कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता अधिक प्रधान है। अगर इनके वर्ण्य विषय को देखा जाए तो प्रतीत होता है कि ये जन्मांध नहीं थे क्योंकि जन्मांध व्यक्ति इतना यथार्थ वर्णन नहीं कर सकता जितना कि सूरदास ने अपने काव्य में किया। वे बाद में अंधे हुए और अपनी अनुभूति की प्रबलता के कारण वे सजीव चित्रण करने में सफल रहे वल्लभाचार्य से भेंट होने के पश्चात् सूरदास की अभिव्यक्ति में विलक्षणता दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने वल्लभाचार्य की प्रेरणा से श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया।

सूरदास की प्रतिभा का उत्कर्ष 'सूरसागर' में दिखाई पड़ता है, इसमें कृष्ण के बाल और यौवन इत्यादि की लीलाएं वर्णित हैं।

महाकवि सूरदास को बाल प्रकृति तथा बाल सुलभ अन्तर्वृतियों के वर्णन की दृष्टि से विश्व साहित्य में बेजोड़ माना जाता है, सूर के वात्सल्य वर्णन की विद्वानों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है, इसलिए तो आचार्य रामचन्द्रशुक्ल

जी ने कहा – ''वात्सल्य भाव का ऐसा अनूठा भावुक सूर के अतिरिक्त और कोई नहीं हुआ है, वे इस क्षेत्र का कोना कोना झांक आए हैं।

बल्लभाचार्य में सूरदास और नंददास को बालकृष्ण संबंधी पद गाने के लिए कहा था सूरदास की रचना 'सूरसागर' में बाललीला के पद संख्या में सबसे अधिक है। संख्या की अधिकता इस तथ्य की सूचक है कि इस लीला में सूर का मन सबसे अधिक रमा है। लीला के प्रति उनका अद्‌भुत आकर्षण है। सूरदास को वर्णन से संतोष नहीं है। कृष्णजन का काल्पनिक बिम्ब इतना यथार्थ हो उठता है कि वे गोवर्धन से नन्द के घर पहुंच जाते है और सीधे नंद को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

''(नंदन) मन मन अनंद भयौ, मैं गोवर्धन तै आयौ।

तुम्हारे पुत्र भयौं हौं मुनि कैं, अति आतुर उठि धयौ।''

उन्होंने लीला का ऐसा वर्णन किया है कि उसके प्रसंग में यशोदा तो है ही बलराम की छेड़छाड़ भी है, श्रीदामा की नाराज़गी भी है और अन्य बीसियों संदर्भ। यशोदा कृष्ण को पालना झुलाती है जिसका वर्णन सूर ने अत्यंत सुंदर ढंग से किया–

''जसोदा हरि पालनैं झुलावै।

हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोई सोइ कुछ भावै।''

जब कृष्ण अपनी मां यशोदा से चोटी के बढ़ने की बात करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे सूरदास उस स्थान पर हो जहाँ ये सब बातें हुई जैसे–

''मैया कबहूं बढ़ेगी चोटी।

किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी।''

लाला भगवानदीन के अनुसार – ''सूरदास ने बाल चरित्र वर्णन में कमाल कर दिया यहां तक कि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास जी इस विषय में इन की समता नहीं कर सकते। निःसंदेह हमें बाल के स्वभाव का जितना स्वाभाविक वर्णन सूर ने किया है उतना किसी अन्य भाषा के कवि ने नहीं किया।'' विद्वानों के विचारों को ध्यान में रखकर हम यही कहेंगे कि सूर वात्सल्य है और वात्सल्य सूर है। सूर ने पहली बार इस क्षेत्र में इतना सुन्दर कहा है कि इस संबंध में औरों के लिए कुछ कहने को नहीं रहा।

सूर के श्रृंगार रस की विश्वव्यापक भावभूमि को भक्त की उच्चतम भव्यता प्रदान करके उसे उज्जवल रस की संज्ञा से विभूषित किया है। सूर ने श्रृंगार रस का पुटपाक से जितना सौम्य और काव्य बनाया है वह कदाचित् ही अन्यत्र मिले। गोपियों और राधा का प्रेम आकस्मिक घटना न होकर सचमुच एक बिरवा या बेल के समान बढ़ा है, उनके शैशव का प्रेम यौवन के माधुर्य रस से परिणत हो गया है–

''लरिकाई को प्रेम कहौ, अलि कैसे करिकै छूटत।''

सूर की गोपियों की तुलना यदि अन्य कवियों की गोपियों से करें तो पता चलता है कि सूर की गोपियों में प्रेम के संस्कार पक्के हैं। इनमें विद्यापति की गोपियों के समान रूपलिप्सा नहीं वरन् सहचर की भावना है।

राधा और कृष्ण के प्रेम वर्णन में प्रेम का चरम आदर्श उपस्थित किया है, जैसे सुन्दरी राधा को देखकर कृष्ण आकर्षित हो जाते हैं। वे पूछते हैं –

''पूछत श्याम, कौन तू गोरी?

कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नांहि कबहू ब्रज खोरी।''

शृंगार रस के अन्य अंग नायिका भेद का वर्णन भी सूर के काव्य में मिलता है। आनन्द सम्मोहिता नायिका का चित्र भी सूर की लेखनी से बड़ा खरा उतरा है–

''नवल किशोर नवल नागरिया।

अपनी भुजा श्याम भुज ऊपर श्याम भुजा अपने उर धरिया।''

संयोग वर्णन के साथ–साथ सूरदास ने वियोग वर्णन भी अति उच्चकोटि का किया है सूर का संयोग चित्रण जितना सुखद और उल्लासमय है वियोग चित्रण उतना ही करूण, मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही है। सूरदास के काव्य में यशोदा, गोपियाँ और राधा तीनों के विरह के वर्णन मिलते हैं। सूर ने राधा के माध्यम से प्रेम का जो परिमार्जित रूप उपस्थित किया है वह शायद ही भारतीय साहित्य में मिले। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में – ''वियोग के समय की राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है वह भी इस प्रेम के योग्य है। मिलन समय की मुखरा, लीलावती, चंचला और हंसोड़ राधिका, वियोग के समय मौन, शांत और गम्भीर हो जाती है। उद्धव ने श्रीकृष्ण से उनकी जिस मूर्ति का वर्णन किया है उससे पत्थर भी पिघल जाते हैं।''

सूर का 'भ्रमरगीत' सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वैदग्ध्यपूर्ण अंश है भ्रमरगीत में निर्गुण पर सगुण ने, सरसता ने शुष्कता पर प्रेम ने दर्शन पर भक्ति ने ज्ञान पर, राग ने वैराग्य पर आसक्ति ने अनासक्ति पर और संयोग ने वियोग पर विजय पाई है। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में – ''भक्तों में मशहूर है सूरदास उद्धव के अवतार थे। यह उनके भक्त कवि जीवन की सर्वोत्तम आलोचना है। सूर ने अपने काव्य में एक ही जगह भगवान का साथ छोड़ा है–भ्रमरगीत में और इस बात में कोई संदेह नहीं कि इस अवसर पर सूरदास को दूना रस मिला था'' सूर की गोपियों नन्ददास की भांति तक्रशील नहीं है, वे शांति से उद्धव का उपदेश सुनती रहती है। परन्तु नन्ददास की गोपियां उद्धव को निर्गुण का संदेश देने पर तक्रशून्य कर देती हैं, उद्धव अवाक् रह जाते हैं। वे उद्धव से प्रश्न कर देती है–

''जो उन्हीं कै गुन नाहि और गुन भये कहां ते।

बीज बिना तरू उगै कहौ तुम कौन कहां तो।''

सूर के उद्धव गोपियों के प्रेम के अथाह सागर में डुबकियां लेते–लेते आनंद विभोर हो जाते हैं। वे ज्ञान का संदेश देने आए थे परन्तु प्रेम का संदेश लेकर जाते हैं। वस्तुतः सूरदास का भ्रमरगीत विप्रलम्भ प्रधान प्रगीत सुना है। इसमें उपालम्भ प्रधान है जो कि वियोग कालीन भावभीनी अनुभूतियों से प्रसूत है। सूर की देखादेखी नंददास ने भ्रमरगीत लिखा परंतु इसमें अंतर है। सूर का भ्रमरगीत मुक्तक काव्य है तो नंददास का प्रबंधात्मक। सूर में लोक का रंग है तो नंददास में शास्त्र का। इन दोनों में भिन्नता के कारण ही सूरदास के भ्रमरगीत को सबसे उत्तम माना जाता है।

वात्सल्य और शृंगार के चित्रण के अतिरिक्त सूर के 'सूरसागर' में प्रासंगिक रूप से वीर, करूण, हास्य, रौद्र, भयानक रसों का भी चित्रण हुआ है पर वे रमें वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्र में ही है। इन दोनों रसों के ये सम्राट हैं और हिन्दी का कोई भी कवि इनकी तुलना में नहीं ठहर सकता।

1.2.3 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ :

सूरदास भक्तिकालीन सगुण भक्ति धारा की कृष्णमार्गी शाखा के प्रमुख कवि हैं। इनके उच्च कोटि के भक्त होने

का प्रमाण यह है कि गोसाईं विट्ठलनाथ ने इन्हें 'अष्टछाप' भक्तों में अग्रणी रखा है। उनके भक्त और कवि दोनों ही रूप एक–दूसरे पर आश्रित द्रष्टव्य होते हैं। इनके काव्य अध्ययन से निम्नलिखित विशेषताओं का ज्ञान होता है।

1. भक्तिभावना : सूरदास सगुण के उपासक थे। विशेषकर वह भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण का अपना इष्ट मानते थे। भक्ति उनके लिए साधन नहीं, साध्य थी। उनकी भक्ति में व्यंजित आत्म–समर्पण से स्पष्ट होता है कि उनकी भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति थी। सूरदास से गोपियों के माध्यम से अपने हृदय की समस्त पीड़ा को अपने इष्ट व आराध्य श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया है। श्रीमद्भागवत् में वर्णित कृष्ण भक्ति के अनुरूप ही सूरदास ने लीला गान भी किया है। वह सगुण भक्त थे तथा निर्गुण के प्रति उदासीनता उनमें स्पष्ट दिखाई देती है। एक स्थान पर वह आत्म–निवेदन करते हुए प्रभु से कहते हैं कि आप जैसे रखोगे वैसे ही रहूँगा।

'जैसेहिं राखहु तैसेहि रहि हौं।
जानत हों दुख–सुख सब जन को मुख करि कहा कहाँ।।'

2. वात्सल्य वर्णन : सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है–वात्सल्य वर्णन जो बेजोड़ और अत्यंत स्वाभाविक बन पड़ा है। सूरदास ने पुरुष होते हुए भी माता के हृदय पाया था। माता यशोदा को आधार बनाकर वात्सल्य भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करते हुए सूरदास ने बालक कृष्ण के प्रति यशोदा की चिंता, व्याकुलता, प्रसन्नता आदि भावों को स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। कृष्ण की एक–एक क्रीड़ा को यशोदा के हृदय से देखते हुए उसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हुए सूरदास ने अद्भुत सफलता प्राप्त की है। श्री कृष्ण की बाल–लीलाओं को देखते हुए वह कहते हैं कि –

'चंद खिलौना तैहों मैया मेरी, चंद खिलौना लैहों।
धौरी को पयपान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं।।'

सूरदास के इस वात्सल्य भाव को ध्यान में रखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि, 'सूरदास वात्सल्य रस का कोना–कोना झांक आये हैं।'

3. शृंगार वर्णन : सूरदास के काव्य में शृंगार रस का चित्रण भी बेजोड़ बन पड़ा है। शृंगार–प्रेम भी उनकी भक्ति का प्रमुख साधन है। सूरदास ने शृंगार रस का चित्रण राधा तथा गोपियों के प्रेम के रूप में किया है। कवि राधा और कृष्ण की प्रेम लीला का व्यापक चित्रण करते हुए, प्रेम के चरम आदर्श की ओर संकेत करते हुए कहता है कि –

'सुनि राधा यह कह विचारै।
वै तैरे तू उनके रंग, अपनो मुख क्यौं न निहारे।।'

यहाँ राधा श्रीकृष्ण से प्रेम करते हुए श्रीकृष्णमय हो गई है। सूरदास के शृंगार का वियोग पक्ष अधिक उज्जवल एवं हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। विरह की अग्नि में तप गोपियों का प्रेम सोने की भांति शुद्ध हो जाता है। 'भ्रमरगीत' में श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् गोपियों को कालिन्दी 'अतिकारी' दिखाई देती है तथा रात 'काली नागिन' जैसी प्रतीत होती है –

'आजु रैणि नहिं नींद परी।

जागत गिनत गगन के तारे, रसना रटत गोबिन्द हरी।।'

श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों के नेत्रों से रात–दिन आँसू प्रवाहित होते रहते हैं। वे श्रीकृष्ण के विरह में अत्यन्त व्याकुल हैं।

4. दास्य भक्ति भाव : सूरदास के काव्य के अंतर्गत 'विनय पदों' में आत्म–दैन्य भाव को भी उजागर किया है। उनकी भक्ति का मूलाधार दास्य–भाव ही रहा है जिसके अंतर्गत वह स्वयं का दीन–हीन व तुच्छ बताते हुए अपने इष्ट श्रीकृष्ण को सर्वगुण सम्पन्न तथा उनका उद्धार कर्ता स्वीकारते हुए उनके विषम् भाव से प्रार्थना करते हैं।

''प्रभु हौं सब पतितन की टीकौ।

और पतित सब घौस चारि के हौं जो जनमत ही को।'

5. प्रकृति–चित्रण : सूरदास के काव्य का निर्माण ब्रज–मण्डल में प्रकृति के परिवेश में हुआ है। उन्होंने प्रकृति–चित्रण स्वतंत्र रूप में न करके कृष्ण–लीलाओं की पृष्ठभूमि के रूप में किया है। कृष्ण जीवन के समान इन्हें प्रकृति का भी कोमल रूप अधिक प्रिय लगा है। सूरदास ने अपने काव्य में प्रकृति और मानव ह्रदय के उद्‌गारों में सुंदर सामंजस्य दर्शाया है।

6. कला पक्ष : सूरदास ने ब्रज भाषा का प्रयोग करते हुए उसे इतना प्रबल और सहज बना दिया कि वह इससे पूर्व के अपने रूप से कहीं आगे जाकर संचार व काव्योप्रयोगी बन गई। सूरदास की काव्य भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, बुंदेलखण्डी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है, जिससे इनकी भाषा और भी अधिक प्रभावशाली बन पड़ी है। लोकोक्तियों, मुहावरों और अलंकारों के सफल प्रयोग के अर्थ में सौन्दर्य एवं गंभीर गुणों का समावेश हुआ है। कहीं–कहीं व्याकरण सम्बंधी त्रुटियां भी हैं, किंतु प्रवाहमयता, सरसता, स्वाभाविकता व सजीवता आदि गुणों के कारण सूरदास की काव्य–भाषा अपना एक विशेष स्थान रखती है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह ज्ञात होता है कि सूरदास का काव्य हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान रखता है। उन्होंने अपने काव्य में अपने आराध्य श्रीकृष्ण व राधा और गोपियों के माध्यम से वात्सल्य, शृंगार, भक्ति भावना आदि का सुंदर व सजीव चित्रण किया है। उनका संपूर्ण काव्य गीति–काव्य है। छन्दों के स्थान पर उन्होंने विभिन्न राग–रागिनियों का प्रयोग किया है किन्तु फिर भी कहीं–कहीं दोहा, रोला और चौपाई छंदों का भी प्रयोग देखने को मिलता है।

1.2.4 सप्रसंग व्याख्या :

1. "मैया मैं नहिं माखन खायौ.................................सिव विरंचि नहिं पायो।"

सप्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश 'मध्या' में संकलित सूरदास की रचना में से उद्‌धृत है। इस पद में सूरदास ने कृष्ण की माखन चोरी जैसी बाल क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या : गोपियाँ जब जसोदा को कृष्ण की माखन चोरी करने की शिकायत करती हैं तब कृष्ण कहते हैं माँ मैंने माखन नहीं खाया। सभी दोस्तों ने मिलकर मेरे मुख को माखन नहीं खाया। सभी दोस्तों ने मिलकर मेरे मुख को माखन लगा दिया। क्या तुम नहीं देख सकती हो कि इतने ऊँचे स्थान पर लटकाए हुए बर्तन को क्या मेरे छोटे–छोटे हाथ उठा सकते हैं। इतना कह कर अपना मुँह साफ कर लिया। लाठी

को दूर फेंककर जसोदा कृष्ण को गले लगा लेती है। बाल कान्हा की प्यारी–प्यारी बातें उसका मन मोह लेती हैं। सूरदास कहते हैं कि जो सुख जसोदा कृष्ण के बाल रूप से प्राप्त करती है, उसको शिव और ब्रह्मा भी पा नहीं सकते।

विशेष : 1. सूरदास ने कृष्ण के बाल रूप का बहुत ही सहज रूप चित्रण किया।

2. वात्सल्य रस का परिपाक हुआ।

2. "मधुबन तुम क्यौं रहत हरे?...............................नख–सिख लौं न जरे।"

कठिन शब्दों के अर्थ : मधुवन–वृंदावन। ठाढ़े–खड़े हुए। मोहन–श्रीकृष्ण। द्रुम तट–वृक्ष के नीचे। साखा–टहनियाँ। टेकि–टेक कर। खरे–खड़े हुए हो। थावर–स्थावर, जड़ पदार्थ। जड़ अगम–निर्जीव और सजीव। ध्यान टरे–समाधि भंग होना। चितवनि–चितवन। पुहुप–पुष्प। धरे–धारण करना। बिरह दवानल–वियोग रूपी जंगल की आग।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश 'मध्या' में संकलित सूरदास कृत 'कृष्ण वियोग' शीर्षक पदों से लिया गया है। इस पद में सूरदास ने श्रीकृष्ण के मथुरा जाने के पश्चात् गोपियों के विरह का मार्मिक चित्रण करते हुए उनके उपालम्भ को अंकित किया है।

व्याख्या : कृष्ण के विरह में तड़प रही गोपियाँ मधुवन को सम्बोधित करते हुए कहते है कि अरे मधुवन, तुम अभी तक हरे–भरे क्यों बने हुए हो? आश्चर्य की बात है कि श्रीकृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा जाने की वियोग–व्यथा से तुम खड़े–खड़े जल क्यों नहीं गए। तुम उन सुख के पलों को कैसे भूल गए हो जब श्रीकृष्ण तुम्हारे वृक्षों के नीचे खड़े होकर व शाखाओं का सहारा लेकर खड़े होते हुए बांसुरी बजाया करते थे। उनकी बांसुरी की मधुर ध्वनि को सुन जड़ और चेतन, स्थावर और जंगम, सब मोहित हो जाते थे। यहां तक कि मुनि लोगों का ध्यान भी भंग हो जाता था। तू उनकी इस मधुर चितवन को याद क्यों नहीं करता जब तेरी ओर वह प्रेम भरी दृष्टि से देखते थे और यह तेरी धृष्टता है कि तेरे वृक्षों पर बार–बार पुष्प खिलते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ मधुवन को उलाहना देती हुई कहती है कि तुम्हें तो श्रीकृष्ण के वियोग में जड़ों से लेकर चोटी तक जल जाना या उलट जाना चाहिए था।

विशेष : 1. गोपियों के हृदय की वियोग दशा को दर्शाया गया है।

2. भाषा भावानुकूल है।

3. स्मरण एवं रूपक अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

1.2.5 लघु प्रश्न–उत्तर :

प्र.1 सूरदास की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।

उत्तर : सूरदास की रचनाओं की संख्या लगभग पच्चीस स्वीकार की गई हैं परन्तु उनकी उपलब्ध एवं प्रामाणिक रचनाओं की संख्या केवल तीन ही मानी गई है–1. सूरसागर 2. सूर सारावली 3. साहित्य लहरी।

प्र.2 सूरदास किस सम्प्रदाय से संबंध रखते थे?

उत्तर : 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार सूरदास वल्लभाचार्य से मिले तथा आचार्य जी ने इन्हें पुष्टि

सम्प्रदाय में दीक्षित किया। इसी के अंतर्गत सूरदास ने कृष्ण के प्रति अपने अन्नय भाव को प्रकट किया।

प्र.3 सूरदास की भक्ति भावना पर नोट लिखिए।

उत्तर : सूरदास सगुणधारा की कृष्णमार्गी शाखा के साथ–साथ अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि हैं। वह विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के उपासक थे। उनकी भक्ति सगुण भक्ति है। भक्ति उनके लिए साधन नहीं साध्य थी। माधुर्यभाव उनकी भक्ति की प्रमुख विशेषता है तथा आत्म–समर्पण भी उनकी भक्ति का अभिन्न अंग है।

1.2.6 सहायक पुस्तकें :

1. सूरदास – डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा।
2. सूर साहित्य – डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी।
3. सूर और उनका साहित्य – डॉ0 हरिवंशलाल शर्मा।
4. भारतीय साधना और सूरदास – डॉ0 मुंशीराम शर्मा।

1.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. सूरदास के वात्सल्य भाव पर विचार करें।
2. 'सूरदास श्रृंगार रस के सम्राट हैं' इस कथन पर अपना मत स्पष्ट कीजिए।
3. सूरदास की भक्ति–भावना पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
4. सूरदास के विरह–वर्णन पर एक नोट लिखें।

पाठ संख्या : 1.3

तुलसीदास

इकाई की रूपरेखा :

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 प्रस्तावना
1.3.2 तुलसीदास का व्यक्तित्व और कृतित्व
1.3.3 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ
1.3.4 सप्रसंग व्याख्या
1.3.5 लघु प्रश्न–उत्तर
1.3.6 सहायक पुस्तकें
1.3.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.3.0 उद्देश्य :

भक्तिकालीन सगुण धारा के अंतर्गत रामकाव्य के अद्वितीय कवि गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। अपनी प्रतिभा के आधार पर उन्होंने भारतीय संस्कृति की समूची विराटता को आत्मसात् कर उसे अपने साहित्य के माध्यम से चरितार्थ किया। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

* तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
* तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
* काव्य स्थलों की व्याख्या तथा विश्लेषण कर सकेंगे।

1.3.1 प्रस्तावना :

राम काव्य के श्रेष्ठ कवि तुलसीदास लोक–मंगल के संवाहक बन कर उभरे हैं। ये लोक–मंगल के कवि थे। लोक–कल्याण के अंतर्गत इन्होंने भक्ति भावना, साधाना, समन्वय भावना तथा विभिन्न सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने के सांकेतिक प्रयास को निभाने का भरसक प्रयास किया है। इनकी रचनाओं में भारतीय दर्शन के श्रेष्ठ तथ्यों के अतिरिक्त समाज की तत्कालीन स्थितियों का प्रकाशन भी स्पष्ट दिखाई देता है। हालांकि वह मूलतः एक भक्त थे, साधक थे परन्तु फिर भी उनके काव्य में शृंगार, वीर हास्य तथा वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति स्पष्ट देखी जा सकती है। लोक मंगल की भावना के अंतर्गत जीवन के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में आदर्शों की स्थापना हेतु तुलसीदास ने विरोधी रूपों में समन्वय का भरसक प्रयास किया।

1.3.2 तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

व्यक्तित्व :

हिन्दी साहित्य के आकाश में प्रकाशमय नक्षत्र की तरह जगमगाने वाले तुलसीदास का जीवन–वृत अभी तक अपेक्षाकृत अंधकारमय है। इनका जन्म समय और जीवन आज तक विवाद का विषय बना हुआ है। विद्वानों का एक समूह इनका जन्म श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन सम्वत् 1554 में स्वीकार करते हैं परन्तु पं. राम गुलाम द्विवेदी, जॉर्ज ग्रियर्सन तथा डॉ. माताप्रसाद गुप्त जैसे विद्वान इनका जन्म सम्वत् 1589 स्वीकार करते हैं जो

कि अधिकांश स्वीकार्य है। इनके जन्म स्थान को लेकर भी इसी प्रकार भिन्न–भिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान बांदा जिले के राजापुर गांव (उत्तरप्रदेश) में ही मानते हैं। यह सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। जवान होने पर तुलसी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हो गया। अभी तक के जीवन में प्रेम से वंचित तुलसी पत्नी के प्रति अति अधिक आसक्त रहने लगे। एक जनश्रुति के अनुसार अपनी पत्नी के मायके जाने पर उसके पीछे–पीछे वहाँ पहुँच गये। वहाँ पत्नी रत्नावली द्वारा की गई भर्त्सना से तुलसी का जीवन–प्रवाह ही बदल गया और वह सभी प्रकार के माया बंधन त्याग कर श्रीराम के अनन्य भक्त बन गए। गृहस्थ त्याग और नरहरिदास से दीाा लेकर यह आजीवन श्रीराम की भक्ति में लीन रहे। जीवन भर अभावों और विपत्तियों से संघर्ष करते हुए सम्वत् 1680 में इनका देहावसान हुआ।

कृतित्व :

राम भक्त तुलसीदास के नाम से प्रचलित रचनाओं की एक बहुत बड़ी सूची है। उसके अंतर्गत कुछ रचनाएँ तो निर्विवाद उनके द्वारा लिखी मानी जाती हैं परन्तु कुछेक के तुलसीकृत होने पर विद्वान एक मत नहीं हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' के अनुसार इनकी निम्नलिखित 12 रचनाएँ ही प्रामाणिक हैं।

1.	रामचरितमानस	2.	रामलला नहछू	3.	वैराग्य संदीपनी	4.	बरवै रामायण
5.	पार्वती मंगल	6.	जानकी मंगल	7.	रामाज्ञ प्रश्न	8.	कवितावली
9.	गीतावली	10.	कृष्ण गीतावली	11.	विनय पत्रिका	12.	दोहावली

इन रचनाओं में श्रीराम के जीवन की कथा, ज्ञान, वैराग्य, शांति, माया तथा दर्शन के विषयों को निरूपित करने के साथ–साथ शिव–पार्वती, कृष्ण, बालक के यज्ञोपवीत और विवाह तथा भक्ति और नीति सम्बंधी पद प्रमुख रूप से पठनीय हैं। तुलसीदास द्वारा रचित पर समस्त काव्य समाज में लोक–मंगल की भावना को प्रेषित करने का विलक्षण साधन है।

1. श्रीरामचरितमानस : समस्त रचनात्मक और साहित्यिक दृष्टियों से तुलसी की सर्वश्रेष्ठ रचना श्रीरामचरितमानस है। यह एक प्रबन्ध–काव्य है, जो सात काण्डों में बंटा हुआ है। इसमें श्रीराम की जीवन–कथा पूर्वापर सहित चित्रित की गई है। लोक–मंगल, समन्वय, सम्बन्ध–निर्वाह और मानवीय कर्त्तव्यों का प्रदर्शन इस महाकाव्य का मूल स्वर है। प्रथम बालकाण्ड में श्रीराम के राज्याअभिषेक प्रश्नोग्राम में निवास तक की कथा है। तीसरा काण्ड अरण्यकाण्ड है। इसमें अनूसूया–मिलन, पंचवटी–निवास, खूर–दूषण–वध, मरीच–प्रसंग, सीताहरण तथा शबरी–प्रसंग चित्रित है। किष्किंधा काण्ड में श्रीराम हनुमान–सुग्रीव–भेंट, बालि–वध, सीता–खोज के लिए हनुमान एवं अन्य वानरों का प्रस्थान तथा हनुमान–जामवंत संवाद कहा गया है। सुन्दरकांड पांचवां कांड है, इसमें हनुमान का लंका आगमन, सीता से संवाद, लंका–दहन, श्रीराम को सूचित करना, सेना का लंका के लिए प्रस्थान, विभीषण की शरणगति एवं समुद्र पर कोप की कथा की गई है। लंका कांड में अंगद–रावण, समूचा युद्ध प्रसंग एवं रावण–वध, सीता की अग्नि–परीक्षा तथा अयोध्या को लौटने तक के प्रसंग कहे गए हैं। अंतिम कांड उत्तर कांड के नाम से लिखा गया है, इसमें श्रीराम का अयोध्या आगमन, भरत द्वारा उनका स्वागत् राम–राज्याभिषेक, ज्ञान–भक्ति निरूपण तथा गरुड़–लोमश–भुषुंडी संवाद लिखे गए हैं। इन कांडों के निरूपणा के माध्यम के कवि ने मानस की प्रबन्धात्मकता को रूपाकार दिया है और प्रस्तुत कृति को महाकाव्य कोटि की रचना बना दिया है।

2. वैराग्य संदीपनी : दोहा, सोरठा और चौपाई छंदों में ज्ञान, वैराग्य, शांति, सन्त–लक्षण आदि विषयों पर कुल 62 छंद लिखे गए हैं। यह तुलसीदास की एक लघु रचना है।

3. जानकी मंगल : 216 छंदों में सीता–राम के विवाह प्रसंग का अति सुन्दर वर्णन है।

4. पार्वती मंगल : 164 छंदों में शिव–पार्वती के विवाह–प्रसंग का सुन्दर प्रसंग है।

5. बरवै रामायण : बरवै छंद में सात काण्डों में विभक्त राम–कथा के स्फुट प्रसंग है।

6. रामाज्ञा प्रश्नावली : सात अध्यायों में लिखित यह पुस्तक शकुन–विचार के लिए लिखी गई है। इसके प्रत्येक अध्याय में 49 छंद (दोहा) हैं और कुल मिलाकर इसमें भी समूची राम–कथा ही प्रस्तुत की गई है।

7. राम लला नहछू : बालक के यज्ञोपवीत और विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले बीस गीतों का यह संग्रह है।

8. दोहावली : इस संग्रह में भक्ति और नीति सम्बन्धी तुलसी विरचित 573 दोहे हैं। इनमें से अनेक दोहे तुलसी की अन्य रचनाओं में से भी लिए गए हैं।

9. कृष्ण गीतावली : ब्रज–भाषा में श्रीकृष्ण सम्बन्धी 51 स्फुट पद इस रचना का विषय हैं। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है।

10. गीतावली : इसमें 300 छंद और सात प्रकरण हैं। मुख्य विषय श्रीराम का सौंदर्य–चित्रण है और इसकी शैली सूर–सागर के समान लिखी गई है।

11. कवितावली : मुख्यतः कवित छंदों में सात कांडों में बांट कर सम्पूर्ण राम–कथा ही कही गई है। प्रतीत होता है कि इसके कवित छंद मुक्तक के रूप में लिखे गए हैं और फिर यथा–समय सम्पादन करके इसे पुस्तक का आकार दे दिया गया है।

12. विनय–पत्रिका : इस ग्रंथ में राग–रागिनियों में बंधे 279 पद संग्रह किए गए हैं। राम, सीता, शंकर के अतिरिक्त इन पदों में अन्य देव–देवियों की वंदनाएं भी गई हैं। प्रत्येक वंदना में अन्त में कवि ने राम–भक्ति का वरदान मांगा है। ज्ञान, वैराग्य, माया और दर्शन के विषयों को भी इसमें यथा स्थान निरूपित किया गया है। ये पद मुक्तक हैं, अतः साहित्य में मुक्तक काव्य में रूप में इस ग्रंथ का विशिष्ट महत्व है।

तुलसी अपने युग की समस्त विचारधाराओं की सारग्राही पुरुषार्थी भक्ति के प्रमुख कवि थे। उनके लिए समूचा विश्व सियाराममय था और वे संकोचहीन होकर सबके मंगल की कामना करते थे। महामारी रोग, दरिद्रता आदि से आक्रान्त समाज को तुलसी ने राम–नाम विष–काट्य प्रदान किया था। मुगल साम्राज्य की शोषक विलासिता को धता बताते हुए राम–शरण में गति का आह्वान किया था। एक ओर से समस्त संसार को सियाराममय मानकर उसकी वंदना करते थे, तो दूसरी ओर वे राम–भक्ति में निष्ठा वाले प्रेमाकुल चातक थे, तो किसी अन्य पथ्य से बहलाया नहीं जा सकता। नाना, पुराण निगमागन के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी वे तर्क के त्याग और आस्था की कथा कहते हैं। 'मानस' में शिवजी पार्वती से शंका–मुक्त होकर विश्वास का दामन थामने को कहते हैं, उसके पीछे तुलसी की साधनातम सोच ही कार्य कर रही थी। जन–जीवन में श्रीराम की प्रतिष्ठा तत्कालीन परिस्थितियों में मात्र दशानन–हनन का संदेश नहीं देती, प्रत्युत युगीन राक्षसों–मुगलिया अन्याय, अत्याचार, धार्मिक बलात्कार आदि को धराशायी कर देने की प्रेरणा बनकर आई है। इन राक्षसी वृत्तियों के उन्मूलन के लिए श्रीराम के माध्यम से जंगली जातियों तक में उनकी सोई शक्ति का उद्‌बोधन करवाकर तुलसी ने भावुक कवि की छवि नहीं बनाई, संघर्षशील लोक–मंगलकारी नेतृत्व का आकार उभारा है। उस युग में तुलसी एक मात्र ऐसे लोक नेता थे, जिन्होंने सांस्कृतिक अवशिष्ट पर नव–निर्माण का आह्वान किया। यद्यपि कबीर पूर्वगामी क्रान्तिकारी स्वर स्वीकार किया जा चुका था, तथापि वहां अविशिष्ट को ध्वस्त करके नव–निर्माण की भूमिका का प्रयास हुआ था–यह दृष्टिकोण सारग्राही तो था, संचयी नहीं था। तुलसी के 'मानस' का नेतृत्व सर्वांगीण था और है भी। स्वयं सम्राट अकबर, जिसने विभिन्न विचारधाराओं की खिचड़ी पकाकर 'दीन–ए–इलाही' की स्थापना का सपना लिया था, तुलसी की तरह लोक मानस में घर कर सकने में असफल रहा था। तुलसी का

'था' आज 'है' में बदल गया है, जबकि 'दीन–ए–इलाही' इतिहास का एक असफल प्रयास बन कर रह गया है।

तुलसीदास संस्कृतज्ञ और विद्वान् थे। उनमें काव्य–रचना, गंभीर दार्शनिकता एवं प्रभावी कथ्य प्रस्तुत करने की अभूत–पूर्व क्षमता थी। तत्कालीन सामाजिक जर्जरता को तुलसी ने सामर्थ्य की घुट्टी दी थी। निर्माण में उनका दृढ़ विश्वास था। वे जीवन को क्षारित करने वाली वृत्तियों से संघर्ष की क्षमता रखते थे, इसलिए उन्होंने काम–क्रोधादि की भर्त्सना करते हुए मनुष्य को उक्त निम्न वृत्तियों से उबरने का संदेश दिया है। यद्यपि तुलसी ने रामानन्दचार्य का व्यापक प्रभाव ग्रहण किया है, तथापि उन्होंने सम्प्रदाय का अन्धा–अनुगमन नहीं किया है। एक प्रौढ़ साहित्यिक की नाई रामानन्द सम्प्रदाय से बाहर एक नवीन जीवन–दर्शन की नींव रखी है। तत्कालीन लोक–मानस को एक नवीन दृष्टि, एक नई चेतना प्रदान की है।

1.3.3 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ :

तुलसीदास मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनन्य भक्त थे और साथ ही साथ वे एक दार्शनिक, कवि, नीतिज्ञ, समाज सुधारक और विचारक के रूप में भी अपनी पहचान अर्जित करते हैं। इन्होंने मध्ययुगीन भारत की सम्पूर्ण चेतना को अपने काव्य में स्थान दिया परिणामस्वरूप इनके काव्य में कई प्रकार की विशेषताओं का समाहित हो जाना स्वाभाविक है। इनके काव्य की यह विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं :–

1. भक्ति भावना : तुलसीदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उनकी भक्ति भावना रही है। वह एक ऐसे भक्त कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भक्ति के महान स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी किया है। तुलसी अपने आराध्य श्रीराम को निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में देखते हैं। वे मानते हैं कि परातत्व ब्रह्म राम ही है अर्थात् इन्होंने श्रीराम को विश्व की समस्त चेतना का मूल स्त्रोत स्वीकारा है। इनकी भक्ति को एक विशेषता इनका दैन्य भाव है। वह भक्ति को चिन्तामणि स्वीकार करते हुए इसकी ओर निष्कपट भाव से बढ़ने पर मुक्ति के मार्ग को पा लेना स्वीकार करते हैं। तुलसी ने भक्ति और प्रेम पिपासा में चातक को आदर्श माना है। इनके अनुसार भक्ति साधना ही नहीं अपितु साध्य भी हैं। वे श्रीराम के प्रति समर्पित है तथा उनके लिए तो श्रीराम के चरणों का अनुराग ही सब कुछ है–

'तुलसी चाहत जन्म भरि, राम चरण अनुराग।'

2. विषय की व्यापकता : तुलसीदास द्वारा गृहीत विषय अत्यंत व्यापक है। वे जीवन के किसी एक विशेष अंश को ग्रहण न कर जीवन के समूचे रूप का चित्रण करते हैं। अपने युग का गहन व गंभीर अध्ययन करने के पश्चात् तुलसी जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष पर भी अपनी लेखनी ले जाते हैं। इनके पूववर्ती आदिकालीन कवियों ने केवल वीर, शृंगार आदि रसों को महत्व दिया तो कबीर ने खण्डनात्मक व अध्यात्म प्रधान वाणी में समाज के अनेक स्थलों को आंखों से ओझल ही रखा। वहीं सूफी कवियों ने प्रेम की प्रमुखता को वाणी दी है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोक–रंजन रूप को ही आधार बनाया है परन्तु तुलसी के जीवन के सभी पक्षों को अपने काव्य में स्थान दिया है परिणामस्वरूप इनके काव्य में धर्म, दर्शन, संस्कृति, भक्ति, काव्य–कला आदि सभी का सुंदर चित्रण हुआ है।

3. समन्वय भावना : तुलसीदास के काव्य में समन्वय की भावना का गुण सर्वत्र विद्यमान है। इनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि सभी समस्याओं का किसी न किसी रूप में चित्रण तथा कोई न कोई समाधान का प्रयास भी अवश्य ही किया गया है। इनके काव्य में वैराग्य और गृहस्थ, ज्ञान, भक्ति और कर्म का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, आदर्श और व्यवहार का समन्वय देखने को मिलता है। इस संबंधी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि, "समन्वय का अर्थ

है कुछ झुकना और कुछ दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना। तुलसीदास को ऐसा करना पड़ा। ऐसा करने के लिए जिस असामान्य दक्षता की जरूरत थी, वह उनमें है। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।''

4. श्रीराम का स्वरूप : तुलसीदास ने श्रीराम को धर्म का रक्षक और अधर्म का विनाशकर्ता स्वीकार किया है। इन्होंने श्रीराम के चरित्र में शील, सौन्दर्य एवं शक्ति की त्रिवेणी दर्शायी है तथा इन्हें सर्वगुण–सम्पन्न मानते हुए इनकी भक्ति को महत्व दिया है। श्रीराम एक आज्ञाकारी पुत्र, गुरु–भक्त शिष्य, सच्चे मित्र, प्रजापालक राजा, विद्वान, उद्धार तथा दयावान रूप में चरितार्थ किये गये हैं। यहीं नहीं तुलसी ने अपने काव्य में श्रीराम को विष्णु का अवतार मानते हुए उनके सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का उल्लेख किया है – ''सोई दशरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान्।''

5. भाव तथा रस : तुलसीदास यद्यपि मूलतः भक्त कवि थे किन्तु इन्होंने अपने काव्य में सभी भावों एवं रसों का अत्यंत सफलतापूर्वक चित्रण किया है। वास्तव में तुलसी मानव मनोवृत्तियों के न केवल ज्ञाता थे अपितु इनके सच्चे पारखी व व्यक्तकर्ता भी थे। इन्होंने मानव–ह्रदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अपनी कसौटी पर परखा और फिर अपने काव्य में स्थान दिया। इनकी कृति 'रामचरितमानस' में भावों की विविधता, तीव्रता और वास्तविकता स्पष्ट देखी जा सकती है। तुलसी अपने काव्य में रस की व्यंजना भी सर्वत्र करते हुए दिखाई देते हैं परन्तु शांत रस व शृंगार रस का चित्रण अति सुन्दर व मर्यादामय बन कर उभरा है। तुलसी ने वीर रस, हास्य रस, रौद्र रस, अद्‌भुत रस आदि को भी विशेष रूप से उकेरा है।

6. शैलीगत विविधता : तुलसीदास कृत गीतावली, दोहावली, कृष्ण गीतावली तथा विनय पत्रिका आदि रचनाएं मुक्तक काव्य की कोटि में आती है। वह प्रमुखतः प्रबंध काव्यकार बन कर सामने आये हैं इनके द्वारा रचित 'रामचरितमानस' प्रबंध कौशल की दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी के गेयपद लालित्यपूर्ण हैं। इन्होंने अपने युग में प्रचलित सभी प्रकार की काव्य शैलियों का प्रयोग बड़ी ही स्पष्टता से किया है। वीर काव्य की ओजपूर्ण शैली, संत काव्य की दोहा–शैली, विद्यापति और सूरदास की गीति–शैली, भाट कवियों की छप्पय–कवित्त आदि शैलियों का प्रभाव तुलसीदास के काव्य पर स्पष्ट दिखाई देता है तथा इन सबका प्रयोग इन्होंने अपने काव्य में सफलतापूर्वक किया है।

7. कला पक्ष : तुलसीदास ने अपने काव्य का रचना धरातल अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं के ताने–बाने पर बुना है परन्तु साथ ही साथ भोजपुरी, बुंदेलखण्डी, अरबी तथा फारसी के शब्दों का प्रयोग भी अपनी सुविधानुसार किया है। तुलसीदास ने संस्कृत के परम पंडित होते हुए भी लोक भाषा को अपने काव्य के लिए चुना। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग ने उनकी भाषा को ओर भी सार्थक रूप दिया है। अलंकार उनके काव्य में सहज रूप प्रकट हुए हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि उनके प्रिय अलंकार रहे हैं परन्तु इसके अतिरिक्त इन्होंने दृष्टांत, अनुप्रास, व्यतिरेक, जनसंख्या आदि कई अन्य अलंकारों का भी प्रयोग किया है। छंद क्षेत्र में इन्होंने चौपाई, दोहा, सोरठा, छप्पय, कवित्त, बरवै आदि का प्रयोग बहुत ही सफलतापूर्वक किया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि तुलसीदास के काव्य में भावपक्ष और कला पक्ष अपने अत्यंत प्रौढ़ रूप में चरितार्थ हुए हैं। अपनी भक्तिभावना के आधार पर समन्वय को बढ़ावा देने का भरसक प्रयास तुलसी ने अपने काव्य के माध्यम से किया साथ ही साथ कला पक्ष के अन्तर्गत विविध शैलियों, भाषा के परिमार्जित रूप तथा अलंकार और छंदों के चयन ने इनके काव्य को ओर भी ओजस्वी व प्रवाहमय बना दिया। तुलसीदास के काव्य के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि, ''तुलसीदास के काव्य में उनका निरीह भक्त रूप बहुत स्पष्ट हुआ है, पर वे समाज–सुधारक, लोकनायक, कवि, पंडित और भविष्य–स्रष्टा भी थे। यह निष्कर्ष करना कठिन है कि इनमें से उनका कौन–सा, रूप अधिक आकर्षक था और अधिक प्रभावशाली था।''

1.3.4 सप्रसंग व्याख्या :

1. "एहि घाट ते..............................चढ़ाइहौं जू।"

सप्रसंग व्याख्या : प्रस्तुत पद्यांश तुलसीदास कृत 'कवितावली' में से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में कवि ने राम के बनवास गमन के समय रास्ते में नदिया पार करने के लिए जब केवट से पूछा तो केवट कहता है कि इस घाट से थोड़ी दूर जल बहुत गहरा है, मैं आप को दिखा देता हूँ मैं अपनी नाँव में आपको सवार नहीं कर सकता क्योंकि मैंने सुना है कि आप के पाँव पड़ने से पत्थर की अहल्या तर गई, इसलिए कहीं मेरी नाव भी न तर जाय, अगर ऐसा हो गया तो मैं अपनी पत्नी को कैसे समझाऊँगा। मेरी कमाई का और कोई साधन नहीं, मैं अपने बच्चों का पालन पोषण कैसे करूँगा। इसलिए आप चाहे मुझे मार लीजिए, परन्तु मैं आपको पैर धोए बिना, नाँव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

विशेष : 1. एक साधारण व्यक्ति की श्रद्धा, प्रेम और निष्ठा का सहज रूप में चित्रण किया गया है।

2. "रावरे दोष न पायनै.......................................जानकी ओर हहा है।"

सप्रसंग व्याख्या : प्रस्तुत पद्यांश तुलसीकृत 'कवितावली' के अयोध्याकाण्ड में से उद्धृत है। इस पद्य में केवट की सादगी का वर्णन किया है। केवट राम को अपनी नाव पर नहीं चढ़ाना चाहता और कहता है हे राम! आप के पैरों का कोई दोष नहीं किन्तु आपके चरणों की धूल का बड़ा प्रभाव है। यह लकड़ी की बनी नाँव है, पत्थर से कोमल है, और पानी ने इसे और भी कोमल बना दिया है, अतः मैं आपको पैर धोए बिना नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा। तुलसीदास कहते हैं कि यह सुनकर राम, सीता की ओर देखकर हंस पड़ते हैं।

1.3.5 लघु प्रश्न–उत्तर :

प्र.1 रामचरितमानस के सात काण्डों के नाम लिखिए।

उत्तर रामचरितमानस तुलसीदास की उत्कृष्ट रचना है। इन्होंने इस रचना को निम्नलिखित सात काण्डों में विभाजित किया है – 1. बाल काण्ड 2. अयोध्या काण्ड 3. अरण्य काण्ड 4. किष्किंधा काण्ड 5. सुन्दर काण्ड 6. लंका काण्ड 7. उत्तर काण्ड।

प्र.2 तुलसीदास के काव्य में किन–किन विषयों का चित्रण हुआ, स्पष्ट कीजिए?

उत्तर तुलसीदास जीवन के गहन व गंभीर अध्ययन कर्ता थे इसलिए उन्हें जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष का ज्ञान भी बहुत गहरे से था। उन्होंने जीवन के लगभग सभी पक्षों को अपने काव्य के माध्यम हमारे समक्ष रखा है। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति, काव्य कला, भक्ति, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी विषयों का व्यापक चित्रण देखने को मिलता है।

प्र.3 तुलसीदास की दार्शनिक भावना पर नोट लिखें।

उत्तर तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उन्होंने शंकर के अद्वैतवाद और रामानुज के विशिष्ट द्वैतावाद के सिद्धांतों का चित्रण कुशलता–पूर्वक किया है, यही नहीं उन्होंने विभिन्न दार्शनिक मतों को ग्रहण करते हुए उनमें तारतम्य बैठाकर उनका अद्‌भुत समन्वय किया है। उनकी दार्शनिक विचारधारा मौलिकतापूर्ण है। मायावाद का चित्रण करते समय तुलसी ने नैतिकता को टूटने नहीं दिया जोकि उनकी एक विशिष्टता है। तुलसीदास ने दर्शन के नीरस सिद्धांतों को भावपूर्ण एवं कोमल भाषा में बड़ी सफलता–पूर्वक दर्शाया है।

1.3.6 सहायक पुस्तकें :

1.	श्री गोस्वामी तुलसीदास	–	शिवनंदन सहाय
2.	गोस्वामी तुलसीदा	–	श्यामसुन्दर दास
3.	तुलसी दर्शन	–	डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र
4.	तुलसीदास और उनका युग	–	डॉ0 राजपति दीक्षित।

1.3.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. तुलसीदास की भक्ति भावना पर विस्तार सहित चर्चा करें।
2. 'तुलसीदास का काव्य आज भी प्रासांगिक है' इस मत पर विचार करें।
3. तुलसीदास के राम–स्वरूप पर विचार कीजिए।
4. तुलसीदास की समन्वय–भावना पर विस्तारपूर्वक विचार करें।

पाठ संख्या : 2.1 **लेखक ः डॉ॰ कृष्ण भावुक**

‘अंग्रेज़–स्तोत्र’
(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

पाठ की रूपरेखा ः

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना
2.1.2 ‘निबन्ध’ का अर्थ और परिभाषाएँ
 2.1.2.1 ‘निबन्ध’ शब्द का अर्थ
 2.1.2.2 ‘निबन्ध’ की परिभाषा
  2.1.2.2.1 भारतीय आचार्यों के अनुसार ‘निबन्ध’ की परिभाषाएँ
  2.1.2.2.2 पाश्चात्य विचारकों के अनुसार ‘निबन्ध’ की परिभाषाएँ
2.1.3 ‘निबन्ध’ का महत्त्व
2.1.4 ‘निबन्ध’ की विशेषताएँ
2.1.5 ‘निबन्ध’ के प्रकार और शैलियाँ
 2.1.5.1 समास–शैली
 2.1.5.2 व्यास शैली
 2.1.5.3 धारा–शैली
 2.1.5.4 विक्षेप–शैली
2.1.6 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन–परिचय
2.1.7 निबन्ध ‘अंग्रेज़–स्तोत्र’ का सार
2.1.8 निबन्ध ‘अंग्रेज–स्तोत्र’ का उद्देश्य
2.1.9 सप्रसंग व्याख्यायें
2.1.10 कठिन शब्दों के अर्थ
2.1.11 अभ्यास के लिए प्रश्न।

2.1.0 उद्देश्य ः

2.1.1 प्रस्तावना ः

2.1.2 ‘निबन्ध’ का अर्थ और परिभाषाएँ ः

2.1.2.1 ‘निबन्ध’ शब्द का अर्थ ः

निबन्ध का मौलिक अर्थ नि + बन्ध (बाँधना) + घञ् (अर्थ–संग्रह) रोकना (वाचस्पत्यम्) या नि + बन्ध + अच् = नीम का वृक्ष (जटाधर) और उसके सेवन से कुष्ठ रोगरोध है। ‘निबन्ध’ शब्द के व्युत्पत्ति–लभ्य अर्थ पर विचार किया जाये, तो उसका अभिप्राय किसी वस्तु को सम्यक् रूप में बाँधना है। ‘बन्ध’ का अर्थ है – बाँधना

और उससे पूर्व 'नि' का उपसर्ग का अर्थ है – भली भाँति या अच्छी प्रकार। प्राचीन काल में रचनाओं के मुद्रण–प्रकाशन की व्यवस्था का अभाव होने के कारण उन्हें भोजपत्रों आदि पर लिख कर बाँध दिया जाता था। इस कारण उन दिनों सम्भवतः 'निबन्ध' शब्द प्रत्येक हस्तलिखित ग्रंथ के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता था। 'निबन्ध' शब्द का यह प्रयोजन आज भी निरर्थक नहीं हुआ है, क्योंकि आज के निबन्धों में भी किसी विषय से सम्बन्धित विचार परस्पर सुसम्बद्ध होते हैं। आज 'निबन' का अर्थ पत्रों के 'निबन्ध' से न ले कर भावों, विचारों और शब्दों का 'निबन्ध' समझना चाहिए, अर्थात् 'निबन्ध' वह रचना है, जिसमें किसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित तर्क–संगत विचार–परस्पर गुम्फित हों। कालान्तर में यह 'निबन्ध' शब्द साहित्य की एक गद्य–विधा विशेष के अर्थ में ही रूढ़ हो गया है, जोकि भाषाशास्त्रीय परिभाषा में 'अर्थ–संकोच' का ही एक अच्छा उदाहरण है। अंग्रेज़ी के 'ऐस्से', फ्रेंच के 'एसाई', लेटिन के 'एग्र्नायर' (एग्ज़ीजियर = निश्चयपूर्वक परीक्षण करना, परखना) जैसे शब्दों का ही हिन्दी समानक शब्द 'निबन्ध' है। पाश्चात्य साहित्य में निबन्ध–विधा के जनक मॉन्तेन द्वारा 'ऐस्से' (Essay) शब्द का प्रयोग 'इच्छित विषय के प्रतिपादन का प्रयत्न या परीक्षण' अर्थ में ही किया गया है। वे इस विधा में विचारों में तारतम्य को आवश्यक नहीं मानते थे। फ्रांसिस बेकन, जॉनसन, अलेक्ज़ेंडर स्मिथ, हॉलवर्ड ने 'निबन्ध' की परिभाषाएँ दी हैं। जॉनसन ने A loose sally of the mind कह कर 'ऐस्से' की जो परिभाषा दी है, उसमें भी इस की स्वच्छन्द, अव्यवस्थित प्रवृत्ति को ही रेखांकित किया गया था। इसके विपरीत हिन्दी 'निबन्ध' शब्द में क्रम, तारतम्य, संगठन इत्यादि का ही भाव रहता है। प्रायः 'लेख' शब्द भी 'निबन्ध' के 'पर्याय' के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। अंग्रेज़ी में 'लेख' के लिए 'Article' शब्द प्रचलित है।

आगे चल कर 'निबन्ध' में अतिशय वैयक्तिकता और बौद्धिक गंभीरता को तो स्वीकार कर लिया गया, किन्तु वैचारिक अव्यवस्था को एक दोष ही माना गया।

'ऐस्से' (Essay) शब्द लेटिन शब्द 'एगज़ीजियर' से तथा फ्रेंच शब्द 'एसाई' से निकला है। इसके स्वरूप को समझने के लिए हमें पाश्चात्य विचारकों की परिभाषाओं को उद्धृत करना आवश्यक हो जाता है। आधुनिक निबन्ध के जन्मदाता **माइकेल दि मॉन्तेन** थे, जोकि 16वीं शताब्दी में फ्राँस में हुए थे। उन्होंने निबन्ध को विचारों, उद्धरणों तथा कथाओं का मिश्रण बताया है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं, "ये मेरी भावनाएँ हैं, इनके द्वारा मैं किसी सत्य के अन्वेषण का दावा नहीं करता हूँ, अपितु इनके द्वारा मैं अपने को पाठकों की सेवा में अर्पित करता हूँ।" मॉन्तेन के इन विचारों से 'निबन्ध' का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है, इसलिए अन्य विद्वानों की परिभाषाओं पर भी विचार करना अपेक्षित है, क्योंकि आगे चल कर में 'निबन्ध' के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।

2.1.2.2 'निबन्ध' की परिभाषा ः

'निबन्ध' को भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने अपने–अपने ढँग से परिभाषित किया है ः –

2.1.2.2.1 भारतीय आचार्यों के अनुसार 'निबन्ध' की परिभाषाएँ ः

1. डॉ॰ श्यामसुन्दरदास के अनुसार, "निबन्ध उस लेख को कहना चाहिए, जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तृत एवं पाण्डित्यपूर्ण विचार किया गया हो।"

2. डॉ॰ गुलाबराय के अनुसार, "निबन्ध उस गद्य–रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव, सजीवता, आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"

3. डॉ॰ कृष्णदेव शर्मा और **डॉ॰ माया अग्रवाल** के अनुसार, "साधारणतः निबन्ध वह गद्यात्मक विधा है, जिसमें लेखक से सम्बद्ध किसी विषय का अत्यन्त सरल और चलता–सा वर्णन हो।"

4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "निबन्ध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो।"

5. डॉ॰ नगेन्द्र के अनुसार, "निबन्ध उस कलात्मक गद्य–लेख को कहते हैं, जिसमें वैयक्तिक दृष्टिकोण तथा आत्मिक ढंग से विषय का प्रवाहपूर्ण वर्णन हो और जो अपने संक्षिप्त आकार में स्वतः पूर्ण हो।"

6. डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त के अनुसार, "निबन्ध वह लघु, मर्यादित गद्यात्मक साहित्य–विद्या है, जिसमें लेखक किसी विषय से सम्बद्ध अपने हृदय–स्थित भावों, अनुभूतियों तथा विचारों का व्यवस्थित ढंग से कलात्मक चित्रण वैयक्तिकता के साथ करता है।"

7. डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार – 1. "निबन्ध से तात्पर्य सच्चे साहित्यिक निबन्धों से हैं, जिसमें लेखक अपने आप को प्रकट करता है, विषय को नहीं। विषय तो केवल बहाना मात्र होता है।"

2. "निबन्ध–लेखक मत का प्रतिपादन नहीं करता, सिद्धान्त स्थिर नहीं करता, वह मनोनीत विषय को अपने व्यक्तित्व के रस में पगा कर प्रकट करता है।"

8. ***हिन्दी शब्द–सागर*** के अनुसार, "निबन्ध वह व्याख्या है, जिसमें अनेक मतों का संग्रह हो।"

9. श्री राजनाथ शर्मा के अनुसार, "निबन्ध का असली लक्षण यही माना गया है कि उसमें दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान, लेखक का व्यक्तित्व झलक उठे।....व्यक्तित्व का स्पर्श ही कृति को साहित्यिक सौंदर्य और सरसता प्रदान कर देता है।"

10. डॉ॰ जयनाथ नलिन के अनुसार – 1. "लेखक और पाठक के बीच निबन्ध सबसे छोटा, सरल एवं सीधा राजपथ है।"

2. "किसी विषय पर स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन ही निबन्ध है।"

11. 'साहित्य-विवेचन' ग्रंथ के लेखक–द्वय के अनुसार, "निबन्ध गद्य–काव्य की वह विधा है, जिसमें लेखक एक सीमित आकार में इस विविध रूप–जगत् के प्रति अपनी भावात्मक तथा विचारात्मक प्रतिक्रियाओं को प्रकट करता है।"

अतः स्पष्ट है कि निबन्ध गद्य की सर्वोत्तम विधा है। गद्यकार की लेखन–प्रतिभा की वास्तविक परख निबन्ध–रचना में ही संभव है। निबन्ध के अन्तर्गत लेखक को किसी एक निर्धारित विषय पर बड़े सुचिन्तिन विचार प्रस्तुत करने होते हैं, विषय के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म विवेचन करके उसे निर्णायक युक्तियों द्वारा एक निश्चित निष्कर्ष देना होता है और इन सबके साथ ही उसे पाठकों के लिए बोधगम्यता, रोचकता आदि विशेषताओं पर ध्यान रखना पड़ता है। निबन्ध में वस्तुतः लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व की सही अभिव्यंजना होती है। उपन्यास, कहानी अथवा नाटक में विभिन्न घटनाएँ और पात्र लेखक के कार्य को पर्याप्त सरल कर देते हैं, जबकि निबन्ध में लेखक को सीधा पाठकों के मन और मस्तिष्क से सम्पर्क स्थापित करना होता है।

2.1.2.2.2 पाश्चात्य विचारकों के अनुसार 'निबन्ध' की परिभाषाएँ ः

साहित्य में 'निबन्ध विधा' के लिए 'ऐस्से' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'ऐस्से' शब्द का अर्थ है – प्रयत्न, परीक्षण का प्रयोग। इसके अनुसार 'निबन्ध' (ऐस्से) वह रचना है, जिसमें किसी विषय पर विचार करने का प्रयत्न किया जाए और उन विचारों का युक्तियों एवं तर्कों के आधार पर परीक्षण करके उनकी सत्यता–असत्यता का विवेचन किया जाए। निबन्ध के स्वरूप को भली भाँति समझने के लिए विभिन्न सिद्धान्तों द्वारा दी गई निबन्ध–सम्बन्धी परिभाषाएँ भी पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं, जिनमें से कतिपय यहाँ उद्धृत की जा रही हैं ः –

1. **ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी** के अनुसार *"A composition of moderate length on any particular subject, originally implying want of finish, an irregular and indigested piece but now said of a composition more or less elaborate in style, though limited in range."*

2. **ह्यू वॉकर** (Hugh Walker) के अनुसार, *"Apparently there is no subject, from the stars to the dust-heap and from the amoeba to man, which may not be dealt with an essay.....The theme itself may be in any deportment of human thought, it may be scientific or philosophic, historical or critical."* (*`The English Essay and Essayists`, p. 2-3*)

3. **एलेक्ज़ैण्डर स्मिथ** के अनुसार, *"The essay as a literary form, resembles the lyric, in so far as it moulded by some central mood - whimsical, serious or satirical. Give the mood and the essay, from the first sentence to the last grows around it as the cocoon grows around the silkworm."* – अर्थात् 'निबन्ध प्रगीत की भान्ति किसी व्यक्तिगत अनुभूति, मानसिक परिस्थिति विशेष से सम्बन्धित रहता है। निबन्ध मानसिक स्थिति को केन्द्रित करके लिखा जाता है, जिस प्रकार रेशम के कीड़े के चारों ओर कोकून घर कर जाता है।'

4. **डॉ॰ जॉनसन** के अनुसार, *"........a loose sally of the mind, an irragular, indigested piece not a regular and orderly performance."* – अर्थात् निबन्ध 'मुक्त मन की एक अनियमित मौज और अपक्व–सी रचना होती है, न कि कोई नियमबद्ध और व्यवस्थित कृति।'

5. **मरे** के अनुसार, *"An essay is a composition of moderate length on any particular subject or branch of subject, a composition more or less elaborate in style limited in range."* – अर्थात् 'किसी विशेष विषय की भावान्तर शाखा के उपलक्ष्य में की गई मध्यम विस्तार वाली शब्द–योजना **निबन्ध** कहलाती है। यह शब्द–योजना अपने आकार–प्रकार में भले ही विस्तृत प्रतीत हो, परन्तु अपने विषय–प्रसार में उसे सीमित ही होना चाहिए।'

6. **बेकन** के अनुसार, "निबन्ध केन्द्रीभूत ज्ञान के वे कतिपय पृष्ठ हैं, जिनमें विचारों की एक सहज अभिव्यक्ति होती है।"

7. **मॉन्तेन** के अनुसार, "निबन्ध विचारों, उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है।" (Essay is a medley of reflections, quotations and anecdotes.)

8. ***हालवर्ड (Hallword) और हिल (Hill) के अनुसार***, *"The essay proper or the literary essay is not merely a short analysis of a subject, not mere epitome, but, rather a picture of wandering minds affected for the moment by the subject with which he deals. Its most distinctive feature is the egoistical element. "* – अर्थात् 'साहित्यिक निबन्ध किसी विषय का कोई संक्षिप्त रूप नहीं होता, अपितु उसे हम लेखक के मस्तिष्क से उत्पन्न वस्तु विशेष के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रियात्मक चित्र की एक अभिव्यक्ति कह सकते हैं। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता **वैयक्तिकता** अथवा **निजी अहं की भावना** का ही प्रकाशन है।'

9. ***सन्त ब्यू के अनुसार***, "निबन्ध साहित्याभिव्यक्ति का अत्यन्त कठिन, परन्तु प्रमोदपूर्ण अंग है, क्योंकि इसमें लेखक की गम्भीरता और उसकी गागर में सागर भरने की शक्ति का संकेत मिलता है।"

10. ***ओसबर्न्ज़ के अनुसार***, "Essay is light gossipy artical on a topical subject." – अर्थात् 'निबन्ध किसी सामयिक विषय पर हल्के और औपचारिक लेख हैं।'

11. ***प्रिस्टले के अनुसार,*** "Essay is a genuine expression of an original personality, an artful and ending kind of talk." – अर्थात् 'निबन्ध किसी मौलिक व्यक्तित्व की एक कलात्मक और निश्छल आत्माभिव्यक्ति को कहते हैं।'

12. ***अंग्रेज़ी विश्वकोश*** के अनुसार, "निबन्ध किसी भी विषय अथवा उसके किसी एक अंग पर लिखित मर्यादित आकार की रचना है।"

13. ***हर्बट रीड*** के अनुसार, "निबन्ध 3500 शब्दों से ले कर शब्दों तक होना चाहिये। इससे कम शब्दों में लिखा हुआ निबन्ध एक रेखाचित्र है और अधिक शब्दों में लिखा गया निबन्ध एक प्रबन्ध बन जाता है।"

14. ***क्रोचे*** के अनुसार, "जिस लेखक में प्रतिभा तथा ज्ञान–वृद्धि की जिज्ञासा का अभाव होता है, वही निबन्ध रचना में प्रवृत्त होता है। इसी प्रकार वही पाठक निबन्ध पढ़ने में रुचि लेते हैं, जिन्हें हल्की रचनाएँ पढ़ने में आनन्द मिलता है।"

15. ***क्रैम्बल*** के अनुसार, "निबन्ध–लेखन उस लेखक के अनुकूल पड़ता है, जिसमें न प्रतिभा है और न ज्ञान–वृद्धि की जिज्ञासा और पाठक को भी माना है, जो विविधता तथा हल्की रचना में आनन्द लेता है।"

16. ***डॉ॰ सैम्युअल जॉनसन*** के अनुसार, "निबन्ध मन की उच्छृंखल तरंग है, जो नियमित कथा और कृति मात्र होती है। इसमें न कोई क्रम होता है और न ही नियमबद्धता।" इस प्रकार निबन्ध उच्छृँखल भावनाओं की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

17. ***आचार्य रामचन्द्र शुक्ल*** के अनुसार, "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिये, जिसमें वैयक्तिक अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो। बात तो ठीक है, यदि ठीक तरह से समझी जाये। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिये विचारों की शृंखला रखी ही न जाए या जान–बूझकर जगह–जगह से तोड़ दी जाये, जो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोक–सामान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे अथवा भाषा से सरकस वालों की–सी कसरतें या हठयोगियों के–से आसन कराए जायें, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।...निबन्ध–लेखक जिधर चलता है, उधर अपनी सम्पूर्ण मानसिक सत्ता अर्थात् बुद्धि और भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए।"

18. ***विलियम हैनरी*** के अनुसार, "निबन्ध किसी भी विषय (a composition on any topic) पर हो सकता है तथा उसमें अपेक्षाकृत संक्षिप्तता एवं पूर्णता का अभाव (comparative brevity and want of exhaustiveness) होता है।" इसके लिए वे निबन्ध में वर्ण्य विषय के सांगोपांग विवेचन के स्थान पर उसके किसी एक पक्ष पर बल देने के समर्थक हैं। (One aspect of it that should be kept in mind.) इसके अतिरिक्त वह इसकी लेखन–शैली में स्वच्छन्दता तथा अनौपचारिकता (freedom and informality) को भी पर्याप्त महत्त्व देते हैं। अन्त में वह निबन्ध के वैयक्तिक रूप पर भी ज़ोर देते हैं (the true essay is essentially personal.)।

निष्कर्ष ः इस प्रकार निबन्ध को एक खुला पत्र कहा जा सकता है, जो किसी व्यक्ति विशेष को तो सम्बोधित करके नहीं लिखा गया होता है, पर जो भी सहृदय पाठक इसे पढ़ता है, वह यही समझता है कि लेखक उसी को सम्बोधित कर रहा है। निबन्ध की परिभाषाओं में हमें डब्ल्यू॰ ई॰ विलियम्स की परिभाषा काफ़ी उचित दिखाई देती है। उसका भावार्थ इस प्रकार है – निबन्ध की स्वल्पतम परिभाषा यह है कि यह गद्य–रचना का एक प्रकार है, जो बहुत छोटा होता है और जिसमें केवल वर्णन नहीं होते हैं। कभी–कभी निबन्धकार अपनी बात को सिद्ध करने के लिए प्रसंगों का आश्रय ले सकता है, कभी उपन्यासकार की भाँति पात्र–सृष्टि भी कर सकता है, परन्तु उसका मूल उद्देश्य कथा कहना नहीं है। निबन्धकार का मुख्य कार्य सामाजिक, दार्शनिक, आलोचक या टिप्पणीकार जैसा होता है।

2.1.3 'निबन्ध' का महत्त्व ः

गद्य–साहित्य में निबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान युग मुख्यतः गद्य–युग माना जाता है। संस्कृत की एक उक्ति के अनुसार 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' – अर्थात् 'गद्य कवियों की कसौटी है।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "यदि गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की भी कसौटी है। गद्य के उत्कृष्ट रूप का दर्शन निबन्ध में ही होता है।" गद्य–शैली का पूर्ण विकास हमें निबन्ध में ही देखने को मिलता है। निबन्ध–लेखक एक ऐसे पथ का अनुसरण करता है, जो पूरी तरह से किसी का जाना–समझा नहीं होता है। उसे अपनी भाषा–शक्ति से प्रामाणित करना होता है कि यह अनजाना पथ उसके लिए सर्वथा परिचित और अपना ही है।

2.1.4 'निबन्ध' की विशेषताएँ ः

निबन्ध की पूर्वोक्त परिभाषाओं से उभरने वाले स्वरूप के आधार पर 'निबन्ध' की कुछ विशेषताएँ पता चलती हैं। संक्षेप में ये विशेषताएँ अग्रलिखित हैं ः –

1. निबन्ध लघु आकार की एक ऐसी रचना होती है, जिसे सरलता से पढ़ा तथा समझा जा सके। किसी भी अवकाश के समय इसको सामान्य रूप से मनोरंजनार्थ पढ़ा जा सकता है।

2. इसमें किसी सिद्धान्त विशेष का परिचय देने की अपेक्षा जीवन और जगत् की सामान्य बातों को ही हल्के–फुल्के तथा रोचक ढँग से प्रस्तुत किया जाता है। किसी दार्शनिक या नैतिक सिद्धान्त–प्रतिपादन से इसकी रोचकता के नष्ट होने का भय रहता है।

3. निबन्ध में एक साथ अनेक भावों की अभिव्यक्ति न हो कर एक ही विषय, विचार या अनुभूति का वर्णन होता है, इसीलिए उसमें सर्वत्र वैचारिक एकता तथा संगति पायी जाती है।

4. निबन्ध में कलात्मक स्पर्श भी होता है। यह स्पर्श आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार का होता है। आन्तरिक कलात्मक स्पर्श से उसमें क्रमबद्धता उत्पन्न होती है और आत्माभिव्यक्ति को भी अवसर मिलता है।

5. निबन्ध में लेखक को अपनी बात कहने का पूरा अवसर मिलता है और उसका वैयक्तिक दृष्टिकोण ही 'निबन्ध' को एकसूत्रता प्रदान करता है, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि लेखक के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम सुन्दर और रोचक हो।

6. कविता की तरह 'निबन्ध' में भी 'बुद्धि' की अपेक्षा 'हृदय' की प्रधानता रहती है और उसी से वह पाठक के हृदय को प्रभावित करता है। इसके साथ ही लेखक अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए मूर्त्त विधान का आश्रय लेता है, परन्तु निबन्ध को नितान्त विचारहीन भी नहीं कहा जा सकता है। इस पर निबन्ध ाकार के चिन्तन तथा मनन का विशेष प्रभाव पड़ता है।

7. निबन्ध की शैली का भी बहुत महत्त्व है। शैली जितनी अधिक रोचक और आकर्षक होगी, निबन्ध भी उतना ही अधिक पठनीय होगा। निबन्ध का बाह्य सौन्दर्य शैली की इसी चारुता से बढ़ता है।

बाबू गुलाबराय के अनुसार ये बातें प्रायः सभी निबन्धों में पाई जाती हैं –

1. निबन्ध अपेक्षाकृत आकार में छोटी एक गद्य–रचना के रूप में होता है। अधिकांश निबन्ध गद्य में ही लिखे जाते हैं, परन्तु कुछ निबन्ध पद्य में भी लिखे गये हैं, जैसे – Pope`s 'Essays on Man' और महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'हे कविते' नामक निबन्ध। निबन्ध के आकार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। यह बड़ा भी हो सकता है और छोटा भी।

2. निबन्ध में लेखक के निजीपन और व्यक्तित्व की झलक होती है। साहित्य की अन्य विधाओं में लेखक का व्यक्तित्व कुछ अंशों तक ओझल रह सकता है, किन्तु निबन्ध में नहीं। कारण यह है कि निबन्ध में लेखक जो कुछ लिखता है, उसको अपने निजीपन के अनुरूप अथवा अपने विशेष दृष्टिकोण से लिखता है। उसमें उसके व्यक्तिगत अनुभव रहते हैं। उसके विचार और स्वभाव की विशिष्टताएँ ऊपर उभर आती हैं।

3. निबन्ध में अपूर्णता और स्वच्छन्दता के रहते हुए भी वह स्वतःपूर्ण होता है। उसे कुछ अंशों तक गद्य का मुक्तक काव्य भी कह सकते हैं, जिसमें प्रगीत–काव्य का–सा निजीपन और तन्मयता रहती है। जिस प्रकार कहानी जीवन के किसी एक अंग की झाँकी है, उसी प्रकार निबन्ध भी जीवन का एक दृष्टिकोण है। वह जीवन की एक नई झलक ले कर आता है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह विषय का पूर्ण प्रतिपादन ही करे। निबन्धकार अपनी रुचि के अनुसार विषय का कोई एक अंश चुन लेता है।

4. निबन्ध साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचक और सजीव होता है। वह केवल वर्णन मात्र न हो कर, लेखक की प्रतिभा की चमक–दमक से पूर्ण होता है। यहाँ तक कि दार्शनिक या सैद्धान्तिक निबन्ध दर्शन और सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक सजीव होता है। उसमें उत्तम शैली का उभार लाने के लिए ध्वनि, हास्य, व्यंग्य, लाक्षणिकता और कुछ अलंकारों का प्रयोग भी होता है। निबन्धकार अपनी प्रतिभा से सामान्य विषय को भी असामान्य और नगण्य को महान् बना देता है।

5. निबन्ध को हम गद्य में अभिव्यक्ति एक प्रकार का 'स्वगत भाषण' भी कह सकते हैं। निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व प्रधान होने के कारण ऐसे निबन्धों को साहित्य के अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया जा सकता है, जिनमें

दार्शनिक वाद–विवाद, विधान अथवा राजनीति का ऐसा विवेचन किया जा सकता है, जिनमें लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित न हो सका हो, इसलिए आत्म–निवेदन अथवा निजी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति में ही निबन्ध कला का चरम उत्कर्ष माना गया है। इसमें लेखक को अपनी वैयक्तिक प्रतिभा के प्रकाशन का पूर्ण अवसर मिलता है।

निष्कर्ष ः हॉलवर्ड और हिल ने ***लैम्ब्ज़ ऐस्सेज़*** में संक्षिप्तता, विचारों का संग्रह, एक विचार से प्रतिबद्धता, निजी विचार की प्रधानता, बुद्धि की अपेक्षा हृदय की प्रमुखता और स्वतन्त्र विचारों की निर्बाध अभिव्यक्ति को 'निबन्ध' की विशेषताएँ घोषित किया है। वास्तव में 'निबन्ध' के यही प्रमुख तत्त्व या प्रवृत्तियाँ हैं।

2.1.5 'निबन्ध' के प्रकार और शैलियाँ ः

निबन्धों का विभाजन कई प्रकार से किया जाता है। कुछ विद्वानों ने विषय को दृष्टि में रखते हुए इसको सांस्कृतिक, राजनीतिक, दार्शनिक, सामाजिक इत्यादि वर्गों के अन्तर्गत बाँटा है। कुछ विद्वानों ने शैली को ध्यान में रखते हुए प्रतीकात्मक शैली, लाक्षणिक शैली, व्यास–शैली, समास–शैली इत्यादि के अन्तर्गत इसे विभाजित किया है। सामान्यतः अभिव्यक्ति की विभिन्न प्रणालियों की दृष्टि से निबन्ध के चार प्रमुख प्रकार स्वीकार किये जाते हैं –

1. वर्णनात्मक (Description) 2. विवरणात्मक (Narrative) 3. विचारात्मक (Reflective) 4. भावात्मक (Emotional)

बाबू गुलाबराय ने इस विभाजन की व्याख्या इस प्रकार की है – "वर्णनात्मक निबन्धों का सम्बन्ध देश से है, विवरणात्मक का काल से, विचारात्मक का तर्क से और भावात्मक का हृदय से। यद्यपि काव्य के चारों तत्त्व 'कल्पना तत्त्व, रागात्मक तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व' सभी प्रकार के निबन्धों में अपेक्षित रहते हैं, तथापि वर्णनात्मक और विचारात्मक निबन्धों में कल्पना की प्रधानता रहती है। विचारात्मक निबन्धों में बुद्धि तत्त्व को और भावात्मक निबन्धों में रागात्मक तत्त्व को प्रमुखता मिलती है। शैली तत्त्व सभी में समान रूप से वर्तमान रहता है। वर्णनात्मक और विवरणात्मक दोनों ही प्रकार के निबन्धों में कहीं विचारात्मकता की और कहीं भावात्मकता की प्रधानता हो सकती है। विचारात्मक तथा भावात्मक का भी मिश्रण होना सम्भव है।" ऐसी स्थिति में ये वर्ग बनाने में कोई तुक नहीं दिखाई देता है। निबन्ध की अन्विति का केन्द्र लेखक ही रहता है, जो मूलतः एक मनुष्य ही है। उसमें कल्पना, तर्क, भावना, विचार, सभी कुछ समन्वित होता है। निबन्ध में भी उसका अलग–अलग खण्डशः विभाजन असम्भव है।

डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "जनतन्त्र का ज़माना है, छापे की मशीनों की भरमार है। कह सकने की योग्यता रखने वाले हर भलेमानस को किसी–न–किसी विषय पर कुछ–न–कुछ कहना है। हर छापे की मशीन को अपना पेट भरने के लिए कुछ–न–कुछ छापना है। सो, राज्य भर के विषयों पर निबन्ध लिखे जा रहे हैं। कहाँ तक कोई सबका लेखा–जोखा मिलाए। सभी विचार किसी–न–किसी निबन्ध–शैली में लिखे जाते हैं। उनमें या तो विशुद्ध ऊहापीह–मूलक चिन्तन हो और या फिर लेख का अपना व्यक्तित्व प्रधान हो उठा हो। निबन्ध में कभी एक बात प्रधान हो उठती है, कभी दूसरी, पर किसी–न–किसी रूप में रहती अवश्य है।"

हम स्थिति के प्रकाश में हमारा यह विचार है के निबन्ध के वर्ग बनाना अधिक उचित नहीं है, परन्तु यदि ऐसा करना आवश्यक ही हो तो हम कम–से–कम वर्ग बनाने के पक्ष में हैं। आचार्य द्विवेदी के पूर्वोक्त कथन से संकेत ग्रहण करते हुए हमें निबन्ध के दो वर्ग बनाना अपेक्षाकृत कम आपत्तिजनक मालूम होता है। पहला वह जिसमें लेखक का व्यक्तित्व अत्यधिक मुखरित हो रहा हो और दूसरा वह जिसमें व्यक्तित्व का स्थान गौण और विषय का प्रमुख हो। प्रथम को विषयी–प्रधान (Subjective) और द्वितीय को विषय–प्रधान (Objective) नाम देना उचित होगा। इन वर्गों में भी उपसर्ग बनाये जा सकते हैं। इनकी कोई निश्चित सीमा–रेखा नहीं है। जैसे

द्वितीय में विषय के अनुरूप मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक इत्यादि जितने चाहे वर्ग बना सकते हैं। वास्तव में लेखक वर्गों को ध्यान में रख कर निबन्ध लिखने नहीं बैठते।

वणर्नात्मक और विवरणात्मक निबन्ध शैली की दृष्टि से बहुत क़रीब होते हैं। वर्णन की अपेक्षा विवरण में वस्तुओं के रूप और व्यापार का अधिक ब्यौरा होता है। भावात्मक निबन्धों में लेखक के भाव की तरंगें होती हैं। किसी भी पूर्व स्मृति, किसी प्राचीन कला–कृति, किसी रमणीय दृश्य, कल्पना की उड़ान अथवा इसी प्रकार के किसी भावनापूर्ण प्रसंग से प्रेरित हो कर लेखक भावुक हो जाता है।

हास्य और व्यंग्य वाले निबन्धों में काल्पनिक प्रसंगों की उद्‌भावना करके किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक या अन्य सन्दर्भ की असंगति का चित्रण करके लेखक हास और व्यंग्य की उद्‌भावना किया करता है।

समीक्षात्मक निबन्धों में समीक्षक का विश्लेषण और उसके द्वारा अपनाये गए समीक्षा के मापदण्डों का भी प्रकट होना आवश्यक होता है। बेसिर–पैर की अथवा आग्रहपूर्ण आलोचना का कोई महत्त्व नहीं होता है। समीक्षक का जो मापदण्ड हो, उसके आधार पर वह सबका मूल्यांकन करे। समीक्षक की अपनी पसन्द और नापसन्द भी प्रकट हो जाती है, लेकिन यह सब निबन्ध के दायरे में रह कर ही होता है।

2.1.5.1 समास–शैली ः

विद्वानों के अनुसार इस शैली में एक–एक पैराग्राफ़ में विचार ठूँस–ठूँस कर भरे रहते हैं तथा एक–एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार–खण्ड को लिए रहता हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में इस शैली के ख़ूब दर्शन होते हैं। इस सम्बन्ध में उदाहरण देखिए –

1. "धन की कितनी इच्छा लोभ के लक्षणों तक पहुँचती है, इसका निर्णय कठिन है। पर किसी मनोविकार की उचित सीमा का अतिक्रमण प्रायः वहाँ समझा जाता है, जहाँ और मनोवृत्तियाँ दब जाती हैं या उनके लिए बहुत कम स्थान रह जाता है और मनोवेगों के आधिक्य से लोभ के आधिक्य में विशेषता यह होती है कि लोभ स्वविषयान्वेषी होने के कारण पैनी स्थिति और वृद्धि का आधार आप खड़ा करता है, जिससे असंतोष की प्रतिष्ठा के साथ–ही–साथ और वृत्तियों के लिए स्थायी अनवकाश हो जाता है और मनोविकारों में वह बात नहीं होती।"

– (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, निबन्ध–संकलन '**निबन्ध–परिवेश**', निबन्ध 'लोभ और प्रीति', पृष्ठ 65)

2. "...तो यह ऐतिहासिक समय है – समय की धारावाहिक चेतना, उसकी इच्छा, भौतिक बौद्धिक उपलब्धियाँ, उसके मामूली और विशिष्ट पुरुष उस युग की मानवता के सामूहिक और पुंजीभूत अनुभव इत्यादि। इस दृष्टि से ऐतिहासिक काल भी असंख्य एवं विविधधर्मी नारी–पुरुषों के व्यक्तिगत काल में घटित होने वाली जीवन और जगत्‌ की समस्याओं का पुंज नाना भाँति की रचनाओं का समूह, नाना प्रकार के चिन्तनों की दिशाओं की धुरी है।" – (डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ, निबन्ध–संकलन '**निबन्ध–परिवेश**',निबन्ध 'सहज जीवन–बोध ः खलनायक समय और मामूली मैं', पृष्ठ 141)

2.1.5.2 व्यास–शैली ः

इस शैली में लेखक अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये उदाहरण आदि देता हुआ विस्तार से कार्य लेता है। इस सम्बन्ध में उदाहरण देखिए –

1. "हिन्दू से कह दीजिए कि विलायती खाँड खाने में अधर्म है। उसमें अभक्ष्य चीज़ें पड़ती हैं। चाहे आप वस्तु–गति से कहें चाहे राजनीतिक चालबाज़ी से कहें, चाहें अपने देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए उसकी सहानुभूति उपजाने को कहें। उसका उत्तर यह नहीं होगा कि राजनीतिक दशा सुधारनी चाहिये। उसका उत्तर यह नहीं होगा कि गन्ने की खेती बढ़े। उसका केवल एक ही कडुआ उत्तर होगा – वह खाँड

खाना छोड़ देगा, बनी–बनाई मिठाई गौओं को डाल देगा, या बोरियाँ गंगा में बहा देगा।"

– (पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, '**निबन्ध–परिवेश**', निबन्ध 'कछुआ धर्म', पृष्ठ 47)

2. "माया जिज्ञासु के मार्ग की सबसे बड़ी बाधक है। अतः प्रस्तुत विधान में जिज्ञासु के ध्यान को निश्चयात्मक रूप से केन्द्रीकरण के लिए संतों ने नाम–जाप का माध्यम अपनाने को कहा है। इससे मनोवृत्तियाँ भटकने से बची रहती हैं और प्रभु के नाम में लिव लगाने वाला इधर–उधर के मायावी प्रलोभनों की ओर आकर्षित नहीं होता।"

– (डॉ॰ मनमोहन सहगल, '**निबन्ध–परिवेश**', निबन्ध 'हिन्दी संतकाव्य में अध्यात्म–तत्त्व', पृष्ठ 132)

2.1.5.3 धारा–शैली ः

इस शैली में भावों की नियमित गति रहती है, जैसे वाक्य एक सूत्र में पिरोए हुए हों। भावों की अबाधता के कारण इस शैली का आश्रय लिया जाता है। इस सम्बन्ध में उदाहरण देखें –

1. "धन्य हैं वे नयन जो कभी–कभी प्रेम–नीर से भर जाते हैं। प्रतिदिन गंगा–जल से तो स्नान होता ही है, परन्तु जिस पुरुष ने नयनों की प्रेम–धारा में कभी स्नान किया है, वही जानता है कि इस स्नान में मन के मलिन भाव किस तरह बह जाते हैं; अन्तःकरण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है; हृदय–ग्रंथि किस तरह खुल जाती है; कुटिलता और नीचता का पर्वत कैसे चूर–चूर हो जाता है।"

– (प्रो॰ पूरनसिंह, '**निबन्ध–परिवेश**', निबन्ध 'नयनों की गंगा', पृष्ठ 34)

2. "लगभग पच्चीस वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद आज अपनी इस 'जननी–जन्म–भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' धरती पर लौटा हूँ। असली लौटना शरीर से नहीं होता, मन और आत्मा से होता है। मैं मन और आत्मा से लौटा हूँ। आँखों में एक स्वप्न सँजोए। हाँ, स्वप्न ही तो है यह पंजाब ! देश के बाक़ी हिस्सों को देख लेने के बाद विश्वास ही नहीं होता कि इस अलौकिक सौंदर्य और ऐश्वर्य को प्यार में सराबोर इन लोगों को मैं प्रत्यक्ष इन मांसल आँखों से देख रहा हूँ। लगता है, कुदरत ने प्रफुल्लता और आत्मीयता के किसी क्षण में तूलिका हाथ में ले कर एक मोहक चित्र के रूप में इस धारा–चित्र का निर्माण किया है।"

– (राकेश वत्स, '**निबन्ध–परिवेश**', निबन्ध 'अन्तराल के बाद')

2.1.5.4 विक्षेप–शैली ः

इस शैली में लेखक भावों की बाढ़ में बह कर मानो प्रलाप करने लगता है। हिन्दी निबन्धकारों में डॉ॰ रघुवीर सिंह ने ही अधिकांशतः इस शैली का प्रयोग किया है। उनके 'ताज' नामक निबन्ध की प्रस्तुत पंक्तियाँ देखिए–
"हाय ! अन्त हो गया, सर्वस्व लुट गया। परम प्रेमी, जीवन–यात्रा का एकमात्र साथी सर्वदा के लिए छोड़ कर चल बसा। भारत–सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी, सम्राज्ञी मुमताज़ महल सदा के लिए इस लोक से विदा हो गई। शाहजहाँ भारत का सम्राट् था, जहान का शाह था, परन्तु वह भी अपनी प्रेयसी को जाने से नहीं रोक सका।"

निष्कर्ष ः अन्त में, यह कहना भी आवश्यक है कि निबन्धों की और भी अनेक शैलियाँ हो सकती हैं। इतनी अधिक कि उन्हें नाम तक देने में कठिनाई आ सकती है। अतः इस प्रसंग का अन्त अंग्रेज़–आलोचक की इन पंक्तियों से करना उचित प्रतीत होता है –

"साहित्य का नामकरण तथा साहित्य अभिव्यंजनाओं के रूपों का वर्गीकरण करने की प्रवृत्ति सदा गड़बड़ में डालने वाली और उलझाने वाली होती है। यह सब नामकरण या वर्गीकरण केवल सुविधा के लिए ही किया जाता है। यह कहना कि साहित्य रूढ़ लीकों और टाइपों के अनुसार ही चले, कोरा पण्डिताऊपन है।" इसका भावार्थ इतना ही है कि साहित्य एक बड़ी शक्ति है, जो चाहे जिस प्रवाह में बहती है।

2.1.6 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन–परिचय ः

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ 19वीं शती के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् 1850–85 ई॰) के नाम पर ही आधुनिक काल के सर्वप्रथम उत्थान को 'भारतेन्दु–युग' या काल कहा जाता है। उन्हें **'आधुनिक हिन्दी साहित्य का पितामह'** कहा जाता है।

श्रीमान् कविचूड़ामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने सन् 1850 ई॰ के सितम्बर मास की 9वीं तारीख को जन्म ग्रहण किया था। जब वे पाँच वर्ष के थे, तब उनकी पूज्य माता जी तथा जब वे 8 वर्ष के हुए, तब महामान्य पिता जी का स्वर्गवास हुआ, जिससे उनको माता–पिता का सुख बहुत ही कम देखने को मिला। उनको शिक्षा बालकपन से ही दी गई थी और उन्होंने कई वर्ष कॉलेज में अंग्रेज़ी और हिन्दी पढ़ी। संस्कृत, फ़ारसी, बंगला, मराठी इत्यादि अनेक भाषाओं में पारंगत करने के लिए उनके बाबू साहिब ने घर पर निज परिश्रम किया था। इस समय बाबू साहिब तैलंग तथा तमिल को छोड़ कर भारत की सब देशी भाषाओं के पंडित थे। बाबू साहब की विद्वत्ता, बहुज्ञता, नीतिज्ञता, पांडित्य तथा चमत्कारिणी बुद्धि का हाल सब पर विदित है, कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। इनकी बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगों को आश्चर्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था में यह सर्वज्ञता ! कविता की रुचि बाबू साहिब को बाल्यावस्था ही से थी। उनकी उस समय की कविता पढ़ने से जबकि वह बहुत छोटे थे, बड़ा आश्चर्य होता है और उस समय का तो कहना ही क्या है, मूर्तिमान् आशुकवि कालिदास थे। जैसी कविता इनकी सरस और प्रिय होती थी, वैसी आज तक किसी की नहीं होती है। वे कविता सभी भाषाओं में करते थे, पर हिन्दी भाषा की कविता में अद्वितीय थे। उनके जीवन का बहुमूल्य समय सदा लिखने–पढ़ने में जाता था। कोई काल ऐसा नहीं था कि उनके पास क़लम, दवात और काग़ज़ न रहता हो। उन्होंने 16 वर्ष की अवस्था में 'कविवचनसुधा' पत्र निकाला था। इसके उपरान्त तो क्रमशः अनेक पत्र–पत्रिकाएँ सम्पादित कीं और सैंकड़ों पुस्तकें लिख डालीं, जो युग–युगान्तर तक संसार में उनका नाम जैसा–का–तैसा बनाये रखेंगी। 20 वर्ष की अर्थात् सन् 70 में बाबू साहिब ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और सन् 74 तक रहे। वे उसी समय के लगभग 6 वर्ष म्यूनिसिपल कमिश्नर भी थे। साधारण लोगों में विद्या फैलाने के लिए सन् 1867 ई॰ में जबकि बाबू साहिब की अवस्था केवल 17 वर्ष की थी, चौखम्भा स्कूल, जो अब तक उनकी कीर्ति–ध्वजा है, स्थापित किया, जिसके छात्र आज दिन एम॰ ए॰, बी॰ ए॰ बड़ी–बड़ी तनख़्वाह के नौकर हैं। लोगों के संस्कार सुधारने तथा हिन्दी की उन्नति के लिये हिन्दी डिबेटिंग क्लब, अनारक्षिणी, तदीय समाज, काव्य–समाज इत्यादि सभायें संस्थापित कीं और उनके सभापति रहे। भारतवर्ष के प्रायः सब प्रतिष्ठित समाजों तथा सभाओं में से किसी के प्रेज़ीडैंट, सेक्रेटरी, किसी के मेम्बर रहे। उन्होंने लोगों के उपकारार्थ अनेक बार देश–देशान्तरों में व्याख्यान दिये। उनकी वक्तव्यता सरस और सारग्रहिणी होती थी। उनके लेख तथा वक्तृत्व से देश–गौरव झलकता था। विद्या का सम्मान जैसा बाबू साहिब करते थे, वैसा करना आजकल कठिन है, ऐसा कोई भी विद्वान् न होगा, जिसने इनसे आदर–सम्मान न पाया हो। यहाँ के पंडितों ने अपने–अपने हस्ताक्षर करके बाबू साहिब को प्रशंसा–पत्र दिये थे। उनमें उन लोगों ने स्पष्ट लिखा है कि–

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द्र।
जिमि सुझाव दिन वैन के कारन नित हरि चन्द।।

बाबू साहिब दानियों में कर्ण थे, इतना ही कहना ही बहुत है। उनसे हज़ारों मनुष्यों का कल्याण होता रहा। विद्योन्नति के लिये भी उन्होंने बहुत व्यय किया। 500 रुपये तो उन्होंने पंडित परमानन्द जी को 'सतसई' की संस्कृत टीका का दिया था और इसी प्रकार से कॉलिज और स्कूलों में उचित पारितोषिक बाँटे थे। जब जब बंगाल, बम्बई और मद्रास में स्त्रियाँ परीक्षोतीर्ण हुई हैं, तब तक बाबू साहिब ने उनका उत्साह बढ़ाने के लिए

बनारसी साड़ियाँ भेजी थीं, जिनमें से कई एक को श्रीमती लेडी रिपन ने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से बाँटा था। बाबू साहब ने देशोपकार के लिये नेशनल फंड, होम्योपैथिक डिस्पेंसरी, गुजरात और जौनपुर रिलीफ़ फ़ंड, सेलर्ज़ होम, प्रिंस ऑफ् वेल्ज़ हॉस्पिटल और लाइब्रेरी इत्यादि की सहायता के लिए समय–समय पर चन्दा दिया। वे ग़रीब दुखियों की बराबर सहायता करते रहे।

उनके गुणग्राहक भी एक ही थे, जो गुणियों के गुण से प्रसन्न हो कर उनको यथेष्ट द्रव्य देते थे। तात्पर्य यह कि जहाँ तक उनसे बना, दिया, देने से उन्होंने कभी भी अपना हाथ नहीं रोका। देशहितैषियों में पहले इन्हीं के नाम पर अँगुली पड़ती है, क्योंकि यह वह हितैषी थे, जिन्होंने अपने देश–गौरव को स्थापित रखने के लिए अपना धन, मान–प्रतिष्ठा एक ओर रख दी थीं और सदा उसके सुधारने के उपाय सोचते रहे। उनको अपने देशवासियों पर कितनी प्रीति थी, यह बात उनके 'भारत–जननी' और 'भारत–दुर्दशा' इत्यादि नाटकों के पढ़ने से ही विदित हो सकती है। उनके लेखों से इनकी हितैषिता और देश का सच्चा प्रेम झलकता था।

यद्यपि बहुत लोगों ने उनको गवर्मेन्ट का डिस्लॉयल (Disloyal, अशुभचिन्तक) मान रखा था, किन्तु यह उनका भ्रम था। हम मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि वे परम राजभक्त थे। यदि ऐसा न होता तो उन्हें क्या पड़ी थी कि जब प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ आये थे, तो वह बड़ा उत्सव मनाते और भाषा के अनेक छन्दों में बना कर स्वागत–ग्रंथ (**'मानसोपायन'**) उनके अर्पण करते। ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा जिस समय यहाँ पधारे थे, बाबू साहिब ने उनके साथ उस समय वह राजभक्ति प्रकट की थी कि जिससे ड्यूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक वे काशी में रहे, उन पर विशेष स्नेह रखा। **'सुमनाञ्जलि'** उनके अर्पण किया था, जिसके प्रति अक्षर से अनुराग टपकता है। उन्होंने महारानी की प्रशंसा में मनोमुकुल माला बनाई। मिस्र युद्ध के विजय पर प्रकाश्य सभा की, विजयिनी विजयवैजयंती बना कर पूर्ण अनुराग–सहित उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकाशित की। महाराणी के बचने पर 82 में चौकाघाट के बग़ीचे में भारी उत्सव किया था और महारानी के जन्म–दिवस पर सभा करके महाशोक किया था। जब–जब देश–हितैषी लॉर्ड रिपन आये, उनको स्वागतपूर्ण कविता दे कर आनन्दित हुए। सन् 1972 में क्यों मेमोरियल सिरीज में 1500 रुपये दिये ? यह सब लॉयल्टी नहीं तो क्या है ?

बाबू साहिब भारतवर्ष के एज्यूकेशन कमीशन (विद्या समाज) के सदस्य तो हुए ही थे, परन्तु इनका गुण यह था कि विलायत में नेशनल एंथम (राष्ट्रीय गीत) को भारत की सब भाषाओं में अनुवाद करने के लिये महारानी की ओर से जो एक कमेटी हुई थी, इसके मेम्बर भी थे और उनके सेक्रिटरी ने जो पत्र लिखा था, उसमें उसने बाबू साहब की प्रशंसा लिख कर स्पष्ट लिखा था कि, "मुझको विश्वास है कि आपकी कविता सबसे उत्तम होगी" और अन्त में ऐसा ही हुआ। क्यों नहीं, जबकि 'भारती' सदैव उनकी जिह्वा पर थी। सच पूछिये तो कविता का महत्त्व उन्हीं के साथ गया। बाबू साहब की विद्वत्ता और बहुज्ञता की प्रशंसा केवल भारतीय पत्रों ने ही नहीं की, वरञ्च विलायत के प्रसिद्ध पत्र **ओवरलेण्ड**, **इण्डिन** और **होममेल्ज़** इत्यादि अनेक पत्रों ने की है। उनकी बहुदर्शिता के विषय एशियाटिक सोसाइटी के प्रधान डॉ॰ राजेन्द्रलाल मिश्र, एम॰ ए॰ शेरिंग, श्रीमान् पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति महाशयों के अपने ग्रंथों में बड़ी प्रशंसा की गई है। श्रीयुत् विद्यालंकार जी ने अपने **'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'** की भूमिका में बाबू साहब को परम अमायिक, देश–बन्धु, धार्मिक और सुहृद् इत्यादि बहुत–कुछ लिखा है। बाबू साहब अजातशत्रु थे, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं और इन पर पूरा स्नेह रखते थे। हाँ, जिस समय वे लोग यह अनर्थकारी घोर संवाद सुनेंगे, उनको कितना कष्ट होगा। बाबू साहब को अपने देश के कल्याण का सदा ध्यान रहा करता था। उन्होंने गोवध उठा देने के लिये दिल्ली दरबार के समय 60000 हस्ताक्षर करवा कर लार्ड लिटन के पास भेजा था। हिन्दी के लिये सदा ज़ोर देते

गये और एज्यूकेशन कमीशन की अपनी साक्षी में यहाँ तक ज़ोर दिया कि लोग फड़क उठते थे। अपने लेख तथा काव्य से लोगों की उन्नति के अखाड़े में आने के लिये सदा यत्नवान् रहे। साधारण के प्रति ममता इनमें इतनी थी कि माधोराव के धरहरे पर लोहे के छड़ लगवा दिये कि जिससे गिरने का भय छूट गया। इन्कम टैक्स के समय जब लाट साहब यहाँ आए थे, तो दीपदान की बेला में दो नावों में एक पर 'Oh Tax' और दूसरी पर 'स्वागत–स्वागत धन्य प्रभु श्री विलियम म्योर। टैक्स छुड़ावहु सबन को विनय करत कर जोर' लिखा था। उसके उपरान्त टैक्स उठ गया। लोग कहते हैं कि इसी से उठा। चाहे जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं है कि वे अन्त तक देश के लिये 'हाय–हाय' करते रहे।

सन् 1880 ई॰ के 27 सितम्बर के 'सारसुधानिधि' पत्र में बाबू साहब को 'भारतेन्दु' की पदवी देने के लिये एक प्रस्ताव छपवाया गया था और उसके छप जाने पर भारतवर्ष के हिन्दी समाचार–पत्रों ने उस पर अपनी सम्मति प्रकट की और तब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वान् लोगों ने मिल कर उनको 'भारतेन्दु' की पदवी दी, तब से वे भारतेन्दु ही लिखे जाते थे।

बाबू साहब का धर्म वैष्णव था – श्रीवल्लभीय। वह धर्म के बड़े पक्के थे, पर आडम्बर से सदैव दूर रहते थे। उनके सिद्धान्त में परम धर्म भगवत्प्रेम था। वे मत या धर्म को विश्वासमूलक मानते थे, प्रमाणमूलक नहीं। सत्य, अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदि को भी धर्म मानते और समस्त जगत् को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे।

बाबू साहब ने बहुत–सा धन व्यय किया, परन्तु कुछ दुःख न था। कदाचित् दुःख होता भी था, तो दो अवसरों पर, एक जब किसी निज आश्रित को या किसी शुद्ध सज्जन को बिना द्रव्य कष्ट पाते देखते थे; दूसरे, जब कोई छोटे–मोटे काम देशोपकारी द्रव्याभाव से रुक जाते थे। हाँ, जिस समय हमको बाबू साहब की यह करुणा की बात याद आ जाती है, तो हमारे प्राण कंठ में आ जाते हैं। वे प्रायः कहते थे कि "अभी तक मेरे पास पूर्ववत् बहुत धन होता तो मैं चार काम करता –

1. श्री ठाकुर जी को बग़ीचे में पधरा कर धूम–धाम से षड्ऋतु का मनोरथ पूरा करता।
2. विलायत, फ़रासीन और अमेरिका जाता।
3. अपने उद्योग से शुद्ध हिन्दी की एक यूनिवर्सिटी स्थापित करता।
   (हाय रे ! हतभागिनी हिन्दी अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा ?)
4. शिल्प–कला का पश्चिमोत्तर देश में एक कॉलेज करता।"

हाय ! क्या आज के दिन उन बड़े–बड़े धनिक मित्रों में से कोई भी मित्र का दम भरने वाला कोई ऐसा सच्चा मित्र है, जोकि उनके इन मनोरथों में से किसी एक को भी उनके नाम पर पूरा करके उनकी आत्मा को सुखी करे। हाय रे ! हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश, तेरा इतना भारी सहायक उठ गया, अब भी तुझसे उसके लिए बन पड़ेगा या नहीं ? जबकि बंगाल और बम्बई प्रदेश में साधारण हितैषियों के स्मारक चिह्न के लिये लाखों रुपये बात–की–बात में इकट्ठे हो जाते हैं।

बाबू साहब की ख़ास पसन्द की चीज़ें राग, वाद्य, रसिक–समागम, चित्र, देश–देश और काल–काल की विचित्र वस्तुएँ और भाँति–भाँति की पुस्तकें थीं। उनको जयदेव जी, देव कवि, श्री नागरीदास जी, श्री सूरदास जी और आनन्दघन जी का काव्य अति प्रिय था, उर्दू में वज़ीर और अनीस का। वे अनीस को अच्छा कवि समझते थे।

बाबू साहब को तीन सन्तानें प्राप्त हुईं – दो पुत्र तथा एक कन्या। पुत्र दोनों जाते रहे, कन्या का विवाह हो गया।

बाबू साहब कई बार बीमार हुए थे, पर भाग्य अच्छा था, इसलिए अच्छे होते गये। सन् 1882 ई॰ में जब उदयपुर से श्रीमन्महाराणा साहब से मिल कर जाड़े के दिनों में लौटे, तो आते समय रास्ते में ही बीमार पड़ गये। बनारस

पहुँचने के साथ ही श्वास–रोग से पीड़ित हुए। रोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही चला गया। कई महीनों पश्चात् शरीर अच्छा हुआ। लोगों ने भगवान् का धन्यवाद किया। यद्यपि देखने में कुछ दिनों तक मालूम न पड़ा, तथापि भीतर रोग बना रहा और जड़ से नहीं गया। बीच में एक–दो बार उमड़ आया। औषधि चलती रही। शरीर कृशित तो हो चला था, परन्तु ऐसा नहीं था कि जिससे किसी काम में हानि होती, श्वास अधिक तो चला, किन्तु क्षयी के चिह्न उत्पन्न हो गए। अचानक दूसरी जनवरी से बीमारी बढ़ने लगी। दवा, इलाज सब ऊपर से चलता रहा। हाल पूछने के लिए मज़दूरिन आई तो उसने कहा कि जा कर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया–नया छप रहा है। पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है। उसी दिन दोपहर से श्वास वेग से आने लगा, कफ़ में रुधिर आ गया। डॉक्टर, वैद्य अनेक मौजूद थे और औषधि भी परामर्श के साथ करते थे, परन्तु '**मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यों–ज्यों दवा की**'। प्रतिक्षण बाबू साहब डॉक्टर और वैद्यों से नींद आने और कफ़ के दूर होने की प्रार्थना करते थे, पर करें क्या, दुष्ट काल जो सिर पर आ कर खड़ा था, कोई जाने क्या ? अन्ततोगत्वा बात करते–करते पौने 10 बजे रात को भयंकर दृश्य उपस्थित हुआ। अन्त तक श्रीकृष्ण का ही ध्यान बना रहा। देहावसान में श्रीकृष्ण ! श्रीराधाकृष्ण ! हे राम ! आते हैं मुख दिखलाओ' कहा और कोई दोहा पढ़ा, जिसमें से "श्रीकृष्ण.....सहित स्वामिनी........" इतने धीमे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया। देखते–ही–देखते प्यारे हरिश्चन्द्र जी हम लोगों की आँखों से दूर हो गए। चन्द्रमुख कुम्हला कर चारों ओर अन्धकार हो गया। सारे घर में मातम छा गया। गली–गली में हाहाकार मच गया और सब काशीवासियों का कलेजा फटने लगा। लेखनी अब नहीं आगे बढ़ती बाबू साहब की चरणपादुका पर.......।

हाय ! काल की गति भी क्या ही कुटिल होती है। अचानक काल–निद्रा ने भारतेन्दु को अपने वश में कर लिया कि जिसमें सबके सब जहाँ पाहुन–से खड़े रह गये। वाह रे दुष्ट काल ! तूने इतना समय भी नहीं दिया कि बाबू साहब अपने परम प्रिय अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी, बाबू राधाकृष्ण जी तथा अन्य आत्मीयों से एक बार भी अपने मन की बात कहने पाते और हमको जिसे उस समय यह भयंकर दृश्य देखना पड़ा था, इतना अवसर भी नहीं मिला कि अन्तिम सम्भाषण कर लेते। हाय ! हम अपने कलंक को कैसे दूर करें ? वह मोहिनी मूर्ति भुलाये से नहीं भूलती, परन्तु करें क्या ? बाबू साहब की अवस्था कुल 34 वर्ष 3 महीने 7 दिन 17 घण्टे 7 मिनट और 48 सैकिण्ड की थी, परन्तु निर्दयी काल पर कभी किसी का भी वश नहीं चलता है।

निबन्ध ः

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' (बाद में नया नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका') और 'बाला–बोधिनी' में इतिहास, धर्म, भाषा, यात्रा, राजनीति, समाज इत्यादि विषयों और समस्याओं पर अनेक निबन्ध लिखे थे। वास्तव में, उनका निबन्धकार–रूप हिन्दी साहित्य में लगभग उपेक्षित ही रह गया है। कुछ समीक्षकों की दृष्टि में उन्हें 'हिन्दी का प्रथम निबन्धकार' माना जा सकता है। इनके निबन्धों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जा सकता है।

1. पुरातात्त्विक निबन्ध ः 1. रामायण का समय 2. अकबर और औरंगज़ेब 3. मणिकर्णिका 4. काशी

2. सांस्कृतिक निबन्ध ः 1. तदीय सर्वस्व (भूमिका) 2. वैष्णवता और भारतवर्ष 3. भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है 4. ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण।

3. साहित्यिक निबन्ध ः1. सरयूपार की यात्रा 2. मेंहदावल 3. लखनऊ 4. हिन्दी भाषा 5. हरिद्वार 6. वैद्यनाथ की यात्रा 7. ग्रीष्म ऋतु 8. दिल्ली प्रसार–दर्पण। इनके निबन्ध–संख्या 1, 3, 5 और 6 को आजकल यात्रा–साहित्य से सम्बन्धित प्रारम्भिक निबन्ध माना जाता है।

4. हास्य और व्यंग्य–लेख ः 1. कंकड़–स्तोत्र 2. अंग्रेज़–स्तोत्र 3. मदिरास्तवराज 4. स्त्री–सेवा–पद्धति

5. पाँचवें पैग़म्बर 6. स्वर्ग में विचार–सभा का अधिवेशन 7. लेवी प्राणलेवी 8. जाति–विवेकिनी सभा 9. सबै जाति गोपाल की।

5. जीवनचरितमूलक निबन्ध ः 1. सूरदास जी का जीवनचरित्र 2. महाकवि श्री जयदेव जी का जीवनचरित्र 3. महात्मा मुहम्मद 4. बीबी फ़ातिमा 5. लार्ड मेयो साहब का जीवनचरित्र 6. श्री राजाराम शास्त्री का जीवनचरित्र 7. एक कहानी : कुछ आपबीती : कुछ जगबीती।

6. ऐतिहासिक निबन्ध ः 1. कश्मीर–कुसुम 2. बादशाह–दर्पण 3. उदयपुरोदय।

7. विविध निबन्ध ः 1. संपादक के नाम पत्र 2. मदालसा उपाख्यान 3. संगीत–सार, 4. खुशी 5. जातीय संगीत।

8. अन्य विशिष्ट निबन्ध ः डॉ॰ केसरीनारायण शुक्ल द्वारा संगृहीत और सम्पादित पुस्तक 'भारतेन्दु के निबन्ध' (प्रकाशक : सरस्वती मन्दिर जलनबर, बनारस, प्रथम संस्करण संवत् 2008 वि॰) के 'परिशिष्ट' में ये दो निबन्ध भी रखे गये हैं – 1. हिन्दी भाषा 2. श्री वल्लभीय सर्वहन।

2.1.7 निबन्ध 'अंग्रेज़–स्तोत्र' का सार ः

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जब साहित्य में पदार्पण किया, तब उस समय भारत एक पराधीन देश था और अंग्रेज़ इसके शासक थे। भारतेन्दु जी ने देखा कि विदेशी शासक हैं, परन्तु देशी भारतीय किस प्रकार उनकी खुशामद करते हैं। इसके फलस्वरूप वे किसी–न–किसी रूप में लाभ उठाते रहते हैं, चाहे वह धन के रूप में हो या किसी–न–किसी पद के रूप में। अतः भारतेन्दु ने इस निबन्ध में अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक स्थिति उजागर करते हुए अंग्रेज़ों तथा उसके खुशमदी पिट्ठुओं के संदर्भ में मीठी–तीख़ी चुटकियाँ ली हैं।

'अंग्रेज़–स्त्रोत' भारतेन्दु द्वारा रचित एक व्यंग्यात्मक निबन्ध है। इसमें अंग्रेज़ों की स्तुति के बहाने एक ओर अंग्रेज़ों की नीति, व्यवहार, कर्म इत्यादि की मीमांसा हुई है, तो दूसरी ओर भारतीयों पर व्यंग्य हुआ है। निबन्ध का सार इस प्रकार है –

अंग्रेज़ समस्त गुणों से सुशोभित, सुन्दर शरीर वाले, अत्यधिक सम्पत्ति के स्वामी, हर्ता, कर्त्ता, विधाता, त्रिमूर्ति–रूप, त्रिगुणात्मक, सच्चिदानन्द–स्वरूप, इन्द्र, वरुण, वायु, सूर्य, अग्नि, वेद, स्तुति, दर्शन, दशावतार, न्यायमूर्ति, सोलह कला–सम्पन्न इत्यादि सभी कुछ हैं। वे शत्रुओं का विनाश करने के कारण हर्ता, दर्पण आदि का आविष्कार करने के कारण कर्ता, नौकरियाँ देने के कारण विधाता, अज्ञान का अन्धकार दूर करने के कारण सूर्य, तीव्र गति वाली रेल के कारण वायु, मासादि को हज़म कर जाने के कारण अग्नि, विशाल सेना के कारण इन्द्र तथा जल में राज्य होने के कारण वरुण हैं। ईश्वर हो कर राज्य करने, पराये देश में व्यापार करने तथा खेती के कारण वे त्रिमूर्ति हैं। उनके ग्रंथों में उनका सतोगुण, युद्धों में रजोगुण तथा 'संवाद' इत्यादि पत्रिकाओं में उनका तमोगुण प्रकट होने कें कारण वे त्रिगुणात्मक हैं। वे सच्चिदानन्द हैं। उनकी सत्ता उनका सत रूप है, युद्ध में शत्रु को चित कर देना, 'चित्' रूप है और 'उम्मीदवारों' को आमन्त्रित कर देना 'आनन्द'–रूप है। वे चन्द्रमा हैं और इन्कम टैक्स उनका कलंक हैं। वे ही वेद और स्मृति हैं, इसीलिए तो इन्हें नहीं मानते। वे ही दर्शन हैं, क्योंकि सारा न्याय और उसका विवेचन उनके हाथ में है। वे दशावतारी भी हैं। समुद्र में विचरण करने और पुस्तकें छाप–छाप कर वेदों का उद्धार करने के कारण मत्स्यावतार हैं। शराब, विषय–वासना का विष, धन (लक्ष्मी) आदि को देने के कारण कच्छपावतार हैं। गोरे तथा पृथ्वी के स्वामी होने के कारण वराहावतार हैं। मनुष्य और पशु दोनों के गुणों से युक्त होने के कारण नरसिंहावतार हैं। कर्म से चतुर होने के कारण वामनावतार, पृथ्वी को क्षत्रियों से ख़ाली कर देने के कारण परशुरामावतार, अनेक पुल बाँधने के कारण रामावतार; शराब पीने और हल धारण करने के कारण बलरामावतार, वेद–विरोधी होने के कारण बुद्धावतार और शत्रुओं का विनाश करने के कारण कल्कि–अवतार हैं।

अंग्रेज़ एक ऐसी मूर्ति हैं, राज्य–प्रबन्ध जिसका अंग, न्याय सिर, दूरदर्शिता आँखें, क़ानून बाल, कौंसिल मुख, दूसरों से अपने को अलग समझना, नाखून, अन्धकार पीठ, आमदनी हृदय, ख़ज़ाना पेट, लालच भूख, सेवा पाँव और ख़िताब प्रसाद हैं। ऐसे अंग्रेज़ से लेखक व्यंग्यात्मक शैली में प्रशंसा–पत्र, नौकरियाँ, पदवियाँ, टाइटल, धान, मान, यश, आदि माँगता है। इसके लिए भारतीय उनके पीछे चलने, उनकी प्रशंसा करने और कहे अनुसार चलने को तैयार हैं। बूट, पतलून, चश्मा, काँटा–छुरी इत्यादि सभी का प्रयोग करने को तैयार हैं। अपनी भाषा, धर्म, जाति इत्यादि सभी कुछ छोड़ने को तैयार हैं। पाव रोटी, मांस खाने, विधवाओं से विवाह करने, मिस्टर कहलवाने, ईसाई बनने, स्कूल खोलने, चन्दा देने इत्यादि को तैयार हैं। यहाँ तक कि उनका जूठा भोजन भी खाने को तैयार हैं। हमारा दान, परोपकार, विद्याध्यापन इत्यादि सभी कुछ उन्हें प्रसन्न करने के लिए हैं। वे हमें डिनर पर बुलाएँ, बड़ी कमेटियों तथा सिनेट का मेम्बर बनाएँ, जस्टिस या ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाएँ। इसके लिए हम हिन्दू समाज की भी परवाह नहीं करेंगे।

अन्त में, लेखक लिखता है कि इस स्तोत्र को पढ़ने वाले को विद्या, धन, पदवी, मोक्ष इत्यादि की प्राप्ति होती है। दीक्षा, दान, तप, तीर्थ, ज्ञान, योग इत्यादि क्रियाएँ तथा सोलह कलाएँ भी उनके इस पाठ का मुक़ाबला नहीं कर सकती हैं ! जो भी इस स्तोत्र का पाठ प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल में प्रतिदिन करेगा, वह भव–बन्धन से मुक्त हो कर अंग्रेज़–लोक को प्राप्त करेगा।

भारतेन्दु का समसामयिक युग देशभक्ति–राज्यभक्ति तथा प्राचीनता–नवीनता का विचित्र मिश्रण लिये था। इस निबन्ध में इन सभी पर अनेक प्रकार के हास–परिहास व्यंग्य–विनोद आदि द्वारा टीका–टिप्पणी की गई है, इसीलिए इसमें शुद्ध हास्य और पैने व्यंग्य के एक–साथ दर्शन होते हैं। लेखक ने अप्रिय सत्य को मीठे केप्सूल में रख कर देने की चेष्टा की है। यहाँ भाषा में अपरिपक्वता तो अवश्य मिलेगी, परन्तु भाषा का चलतापन और बांकापन भी बहुत आकर्षक है। हास्यपूर्ण रचनाओं में ही किसी लेखक के भाषाधिकार की परीक्षा होती है। भारतेन्दु इस परीक्षा में पूर्णतया सफल हैं।

2.1.8 निबन्ध 'अंग्रेज–स्तोत्र' का उद्देश्य ः

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का काल देशभक्ति–राजभक्ति एवं प्राचीनता–नवीनता का विचित्र मिश्रण लिए हुए था। भारतेन्दु जी ने अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थितियों को तो स्पष्ट किया ही है, साथ ही अंग्रेज़ों तथा उनके खुशामदी पिट्ठुओं के सम्बन्ध में भी मीठी चुटकियाँ ली हैं। नाम से तो यह स्तोत्र है, परन्तु इसमें निहित व्यंग्य अत्यन्त मुखर है। अनक रूपों में अंग्रेज़ों की भावना करते हुए निबन्धकार की कल्पना स्वच्छन्द–विहारिणी हो गई है। भारतीय जन नौकरी, मान, यश, धन, पद इत्यादि पाने के लिए कितने पतित हो चुके थे, इसका इस निबन्ध में व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्णन हुआ है। मांस–मदिरा–सेवन, विदेशी शिक्षा, वेशभूषा तथा भाषा की ओर झुकाव इत्यादि अनेक दुर्गुण उनमें पैदा हो चुके थे।

दूसरी ओर, इस सम्बन्ध में अंग्रेज़ों पर भी व्यंग्य हैं। हर्ता, कर्ता, विधाता, त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति, इन्द्र, वरुण, सच्चिदानन्द, दशावतार इत्यादि अनेक संज्ञाओं और विशेषणों द्वारा लेखक ने अंग्रेज़ों के चरित्र को व्यंग्यपूर्ण ढंग से उभारा है। अंग्रेज़ों ने भारत के व्यापार, राज्य, कृषि इत्यादि सब पर अधिकार कर लिया था। वे पत्रिकाओं द्वारा तमोगुण का प्रचार कर रहे थे। लोगों को ईसाई बना रहे थे। टैक्स लगा कर भारतीयों का शोषण कर रहे थे। उन्होंने भारत से वीरता, वेद, स्मृति, दर्शन इत्यादि का लोप कर दिया और भारतीयों में मांस–मदिरा–सेवन, खुशामदप्रियता, छल–कपट इत्यादि दुर्गुण पैदा कर दिए थे। उनका निर्णय ही 'न्याय' बन गया था। उन्होंने व्यभिचार, अनाचार इत्यादि फैलाये। उन्हें 'दशावतार' कह कर लेखक ने उन पर तीख़ा व्यंग्य किया है। अन्तिम मूर्ति वाला रूपक तो अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण बन पड़ा है।

2.1.9 सप्रसंग व्याख्या ः

"हे भक्तवत्सल ! हम तुम्हारा पात्रावशेष भोजन करने की इच्छा करते हैं, तुम्हारे कर–स्पर्श से लोकमण्डल में महामानास्पद होने की इच्छा करते हैं, तुम्हारे स्वहस्तलिखित दो–एक पत्र बाक्स में रखने की स्पर्धा करते हैं। हे अंग्रेज़ ! तुम हम पर प्रसन्न हो, हम तुमको नमस्कार करते हैं।" (पृष्ठ 30)

प्रसंग ः प्रस्तुत अवतरण 'निबन्ध–परिवेश' के अन्तर्गत भारतेन्दु द्वारा रचित 'अंग्रेज़–स्तोत्र' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके संपादक डॉ॰ योगेन्द्र बख्शी हैं। अंग्रेज़ों की स्तुति के माध्यम से लेखक भारतीयों पर व्यंग्य करता हुआ ये पंक्तियाँ लिखता है।

व्याख्या ः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे भक्तों के प्रिय अंग्रेज़ो ! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं, ताकि तुम हम पर प्रसन्न होवो। हमारी इच्छा है कि हम तुम्हारा बचा हुआ भोजन करें, और तुम्हारे हाथों के स्पर्श द्वारा हम संसार में मान पाना चाहते हैं। इन पंक्तियों में व्यंग्य अत्यन्त तीख़ा है। भारतीय अंग्रेज़ों के जूठे भोजन को खाने में अपने आपको परम भाग्यशाली समझते थे। उनका विश्वास था कि जिस किसी भी व्यक्ति पर अंग्रेज़ अपना हाथ रख दें, वह सारे संसार में सम्मान प्राप्त कर लेगा। यही नहीं, अंग्रेज़ों के हाथ के लिखे पत्रों को पा कर वे अपने आपको धन्य समझते थे। इस प्रकार भारतीयों में आत्महीनता की ग्रन्थि थी, जिसके कारण वे इतने नीचे गिरने में भी लज्जा का अनुभव नहीं कर पाते थे। अंग्रेज़ों के समक्ष भारतीयों की हीनता को लेखक ने अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण ढंग से चित्रित किया है।

गद्य–सौष्ठव ः इन पंक्तियों में भारतेन्दुयुगीन भारतीयों की प्रवृत्ति का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

2.1.10 कठिन शब्दों के अर्थ ः

खिलत	=	जागीर।
होम	=	एट होम, दावत।
सीनट	=	ऊँची कमेटी।
जसटिस	=	जज।
दीक्षा दानं...स गच्छति	=	हे अंग्रेज़ ! दीक्षा, दान, तप, तीर्थ, ज्ञान, योग इत्यादि क्रियाएँ तथा षोड्षी की कलायें भी तुम्हारे इस पाठ की तुलनीय नहीं हैं। विद्यार्थी को विद्या, धन चाहने वाले को धन, स्टार (सेना का उच्च पद) चाहने वाले को स्टार, मोक्ष चाहने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है। (इस स्तोत्र को) एक काल, दो काल तथा तीन काल से उठ कर संसार के बन्धनों से छूटता और अंग्रेज़–लोक को प्राप्त होता है।

2.1.11 अभ्यास के लिए प्रश्न ः

1. 'निबन्ध' किसे कहते हैं ? भारतीय और पाश्चात्य विचारकों की 'निबन्ध' की परिभाषाएँ लिखिए।
2. 'निबन्ध का महत्त्व बताते हुए इसकी विशेषताएँ बताओ।
3. निबन्ध के प्रकार और शैलियों पर एक लेख लिखिए।
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन–परिचय दीजिए।
5. निबन्ध 'अंग्रेज़–स्तोत्र' का सार अपने शब्दों में लिखिए।
6. निबन्ध 'अंग्रेज़–स्तोत्र' का उद्देश्य लिखिए।

7. अग्रलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं।

तुम नानागुण–विभूषित, सुन्दर, कान्ति–विशिष्ट, बहुत संपद्–युक्त हो, अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं।।

तुम हर्ता – शत्रुदल के; तुम कर्त्ता आईनादि के, तुम विधाता – नौकरियों के, अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं।

(ख) आपके सत्वगुण आपके ग्रंथों में प्रकट, आपके रजोगुण आपके युद्धों में प्रकाशित एवं आपके तमोगुण भवत्प्रणीत भारतवर्षीय संवाद पत्रादिकों से विकसित, अतएव हे त्रिगुणात्मक ! हम तुमको प्रणाम करते हैं। तुम हो, अतएव सत् हो, तुम्हारे शत्रु युद्ध में चित्, उम्मेदवारों को आनन्द, अतएव हे सच्चिदानन्द ! हम तुमको प्रणाम करते हैं।

(ग) तुम इन्द्र हो – तुम्हारी सेवा वज्र है, तुम चन्द्र हो –इन्कम् टैक्स तुम्हारा कलंक है। तुम वायु हो – रेल तुम्हारी गति है, तुम वरुण हो – जल में तुम्हारा राज्य है, अतएव हे अंगरेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं।

(घ) हे शुभंकर ! हमारा शुभ करो, हम तुम्हारी खुशामद करेंगे और तुम्हारे जी की बात कहेंगे, हमको बड़ा बनाओ, हम तुमको प्रणाम करते हैं।

हे मानव ! हमको टाइटल दो, ख़िताब दो, हमको अपना प्रसाद दो, हम तुमको प्रणाम करते हैं।

पाठ संख्या : 2.2 **लेखक ः डॉ॰ कृष्ण भावुक**

'नयनों की गंगा'
(प्रो॰ पूरनसिंह)

पाठ की रूपरेखा ः

2.2.0 उद्देश्य
2.2.1 प्रस्तावना
2.2.2 प्रो॰ पूरन सिंह का जीवन–परिचय
2.2.3 निबन्ध 'नयनों की गंगा' का सार
2.2.4 निबन्ध 'नयनों की गंगा' का उद्देश्य (कथ्य, प्रतिपाद्य)
2.2.5 सप्रसंग व्याख्या
2.2.6 कठिन शब्दों के अर्थ
2.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.2.0 उद्देश्य ः

2.2.1 प्रस्तावना ः

2.2.2 प्रो॰ पूरन सिंह का जीवन–परिचय ः

पंजाबी भाषा–भाषी, रसायनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् तथा फ़ॉरेस्ट कॉलेज के इम्पीरियल कैमिस्ट सरदार पूरनसिंह का जन्म सन् 1881 ई॰ में हुआ था। अध्यापक होने के कारण इनके नाम के पूर्व 'प्रोफ़ेसर' शब्द जोड़ा जाता है। इनके हिन्दी निबन्ध कुल छह बताये जाते हैं – 1. 'आचरण की सभ्यता' 2. 'सच्ची वीरता' 3. 'मज़दूरी और प्रेम' 4. 'कन्यादान' 5. 'पवित्रता' 6. 'अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन'। सम्पूर्ण निबन्धों का संकलन 'सरदार पूर्ण सिंह के निबन्ध' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है, जिनके निबन्ध नैतिक और सामाजिक विषयों से सम्बद्ध हैं। निबन्ध–शैली की दृष्टि से इनके निबन्ध अप्रतिम हैं। इनके ये निबन्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता' और निर्धारित निबन्ध 'मजदूरी और प्रेम'। इन्होंने अधिकतर भावात्मक निबन्ध ही लिखे हैं, जिनमें धाराप्रवाही गद्य मिलता है। गद्य की व्यास और समास दोनों ही शैलियों का ग्रहण इनके निबन्धों में मिलता है। आध्यात्मिकता के साथ–साथ मानववादिता की दृष्टि इनमें लेखकीय व्यक्तित्व की विशेषताएँ रही हैं। इन्होंने आचरण, प्रेम, अध्यात्म, मशीनीकरण के कारण श्रमिकों की हानि, मानव, ईश्वर, जीवन, जगत्, श्रम का महत्त्व, आत्मा इत्यादि विविध विषयों पर निबन्धों में अपने विचार स्थल–स्थल पर व्यक्त किए हैं।

इन्होंने भाषा पर पूर्ण अधिकार के साथ लिखा है। भावनाओं में बल होने के इनकी शैली भावाभिव्यक्ति का आदर्श बन गयी है। अलंकारों का प्रयोग इनकी शैली में प्रचुर मात्रा में मिलता है। विषय के विविध पहलुओं पर चिन्तन–मनन, कल्पना आदि सभी दृष्टियों से प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं। विचारात्मक तथा गम्भीर विषय को भी कहानी के मनोरम वातावरण में प्रस्फुटित करने की क्षमता इनमें है।

'आचरण की सभ्यता' शीर्षक निबन्ध इनकी विचारात्मक शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है – "अपने जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों से भरी हुई अन्धकारपूर्ण कोठरी से निकल ज्योति और स्वच्छ वायु से परिपूर्ण खुले देश में जब तक अपना आचरण अपने नेत्र न खोल सका हो, तब तक कर्म के गूढ़ तत्त्व भला कैसे समझ में आ सकते हैं।"

डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी के अनुसार – "प्रस्तुत युग के अन्य महत्त्वपूर्ण लेखक अध्यापक पूरनसिंह ने अधिक निबन्ध नहीं लिखे, परन्तु इनके निबन्ध वस्तु तथा शैली दोनों दृष्टियों से मौलिकता एवं प्रभावी व्यक्तित्व की छाप छोड़ जाने में सफल होते हैं। स्वामी रामतीर्थ से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण इनमें उन्हीं का–सा आवेश, काव्य तथा दृष्टान्त–प्राचुर्य था। इनके 'मज़दूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', 'नयनों की गंगा' नामक निबन्धों में गद्यकाव्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। मानो लेखक ऐकान्तिकता से ही बातें कर रहे हों। इनके निबन्ध यद्यपि विषय–प्रधान ही कहे जायेंगे, परन्तु इनकी भावात्मकता मानो इन्हें विषयी–प्रधानता का गुण भी प्रदान करती प्रतीत होती है। वास्तव में गहन–रसानुभूति उमड़ते भावावेग तथा आत्मीयता के कारण ही ऐसा हो सका है। इसी के साथ विचार–प्रतिपादन में भी निजी चिंता को स्वतन्त्र रूप में बलपूर्वक कह पाना इन्हीं की–सी प्रतिभा की अपेक्षा करता है।"

डॉ॰ जयनाथ नलिन ने इनके विषय में उचित ही लिखा है – "स्वाधीन चिन्तन, अनभिभूत विचार–प्रकाशन, प्रभावशाली व्यक्तित्व, निश्छल–निर्मल अनुभूति, आकर्षक आत्मीयता और सबल मधुर अनुरोध – सभी इनके निबन्धों में मिलेगा। पश्चिमी समीक्षा–सिद्धान्तों के अनुसार निबन्ध का जो स्वरूप संगठित हुआ, जो व्यक्तित्व निखरा, प्राण–बल संचित हुआ, वही सब हमें अध्यापक जी के निबन्धों में मिलता है।"

इनके निबन्धों के सम्बन्ध में डॉ॰ हरमहेन्द्रसिंह बेदी के विचार इस प्रकार हैं – "किसी लेखक की चित्तवृत्ति ही निबन्ध को बुनती है। पूरनसिंह ऐसे संवेदनशील व्यक्ति थे, जो औद्योगिक क्रान्ति की अपेक्षा मानव के आचरण की पवित्रता को अधिक महत्त्व देते थे। उनके लिए सम्पत्ति की अपेक्षा **श्रम** और **प्रेम** का अधिक महत्त्व था। वे धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर आदमी को आदमी से बाँट कर नहीं देखना चाहते थे। वे सबके अन्दर एक ही आत्मा का स्पन्दन देखते थे। यही छायावादियों में सर्वात्मवाद या विश्वात्मवाद के रूप में विकसित हुआ, इसलिए इनके निबन्ध न तो निबन्ध हैं और न कोरे भावात्मक। हिन्दी के आरम्भिक आत्मपरक निबन्धों की वे एक बानगी हैं। द्विवेदी–युग में उनके द्वारा स्थापित की गई भाषा की लाक्षणिकता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के निबन्धों में विचारों की कसावट के लिए प्रयुक्त हुई और छायावादी कवियों में भावों को दूर तक तरंगित करने के लिए, इसीलिए गिने–चुने निबन्ध लिख कर भी वे हिन्दी निबन्धों के विकास में एक पड़ाव हैं।"

डॉ॰ कृष्ण भावुक इनके 'कन्यादान', 'पवित्रता' और 'अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन' इन अन्य तीन निबन्धों के नाम गिनाते हुए यह वक्तव्य देते हैं – "विषय के अनूठे चुनाव और उसके निर्वाह में दार्शनिक, रहस्यवादी, काव्यमयी गद्य–भाषा के अभूतपूर्व प्रयोग के कारण ये अपने युग से बहुत आगे के गद्यकार थे और अन्य सभी समकालीनों से ऊपर एक अलमस्त और विरक्त सूफ़ी फ़कीर के समान विराजमान कहे जा सकते हैं। शैलीगत औदात्य और लालित्य के धूपछाँही रंग घोलता हुआ यह निबन्धकार ऐसी–ऐसी टिप्पणियाँ और सूक्तियाँ लिख गए हैं कि आधुनिक निबन्धकार भी उनकी मेधा के पनघट पर पानी भरते नज़र आयें।"

अन्त में, कहा जा सकता है कि प्रो॰ पूरनसिंह ने अपने जीवन–काल में जितने भी निबन्ध लिखे, वे सब अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

निधन ः सन् 1931 ई॰ में प्रो॰ पूरनसिंह स्वर्ग सिधार गए, किन्तु आज तक उनके निबन्धों ने उन्हें जीवित रखा हुआ है। एक उच्च कोटि के आध्यात्मिक चिन्तक, विचारक और निबन्धकार के रूप में ये सदैव अमर रहेंगे। श्री कृष्णबिहारी 'नूर' की ये पंक्तियाँ इन पर पूरी तरह सटीक बैठती हैं –

अपनी रचनाओं में वो ज़िन्दा है, 'नूर' संसार से गया ही नहीं !

2.2.3 निबन्ध 'नयनों की गंगा' का सार ः

प्रो॰ पूरनसिंह द्वारा रचित 'नयनों की गंगा' नामक निबन्ध में लेखक ने कन्यादान–सम्बन्धी भारतीय रीति का समर्थन अत्यन्त युक्ति–संगत तथा मार्मिक ढंग से किया है। लेखक के मत में यज्ञ–मण्डप पर हुए विवाह की पवित्रता को समझने की आवश्यकता है। विवाह को एक मख़ौल कदापि नहीं समझना चाहिए। इस यज्ञ में देवी और देवताओं को निमन्त्रित करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। पश्चिमी देशों में प्रचलित विवाह–पद्धति तथा इसके बुरे परिणामों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने उन लोगों की भी आलोचना की है, जोकि विवाह को 'कन्यादान' नहीं मानते हैं। सम्पूर्ण निबन्ध में लेखक ने विवाह की पवित्रता और मार्मिकता का ही प्रतिपादन का किया है। कन्या की विदाई के समय माता, पिता, भाई तथा सखी–सहेलियों की आँखों से प्रवाहित होने वाले पवित्र आँसू ही 'नयनों की गंगा' हैं।

आँसुओं में मानव मात्र की आत्मा को पवित्र कर देने की अद्‌भुत क्षमता हुआ करती है। प्रेम की बूँदों में वह शक्ति है कि मनुष्य अपने आपको भी भूल जाता है। इस परमावस्था का अनुभव हुए बिना कला का सच्चा तत्त्व–ज्ञान कभी भी नहीं हो सकता है। चित्रकार की चित्र–कला तथा कवि की काव्य–कल्पना इस गुण के अभाव में सर्वथा निष्प्राण ही होगी। व्यावहारिक जीवन में इन आँसुओं का अत्यधिक महत्त्व है। सर वाल्टर स्कॉट 'लेडी ऑफ़ दी लेक' नामक अपनी कविता में बड़ी ख़ूबी से उन आँसुओं की प्रशंसा करते हैं, जोकि एक पिता अपनी पुत्री को आलिंगित करके उसके बालों पर मोती की लड़ी की तरह बिखेरता है। इन आँसुओं को वे अत्यन्त 'दिव्य–प्रेम' के आँसू मानते हैं। सत्य ही पिता का हृदय अपनी पुत्री के लिए ईश्वरीय हृदय से कुछ कम नहीं होता है। पुत्री की विदाई का अवसर अत्यन्त रोमांचकारी होता है।

भारत में विवाह एक अत्यन्त पवित्र और आध्यात्मिक कर्म माना गया है। लेखक के मत के अनुसार आजकल पश्चिमी देशों में कन्यादान की आध्यात्मिक बुनियाद को ही तोड़ दिया गया है। उन दिनों में पति–पत्नी के झगड़े वकीलों द्वारा जजों के सामने तय होते हैं। 'तलाक' वहाँ एक साधारण–सी बात हो गई है। आज भारत में भी कुछ लोग यह कहने लगे हैं कि कन्या कोई गाय–भैंस या घोड़ा थोड़े ही है, जोकि उसका 'दान' किया जाये ? लेखक के मत के अनुसार जो लोग गम्भीर विचार नहीं करते हैं, केवल वे ही ऐसा कहते हैं। वे जीवन के आत्मिक नियमों की महिमा नहीं जानते हैं।

हमारे आर्य–ऋषियों ने प्रेम–भाव उत्पन्न करने के लिए ही विवाह–पद्धति निकाली थी। विवाह–काल में यथोचित रीतियों से न केवल हवन की अग्नि ही जलाई जाती है, अपितु प्रेम की अग्नि भी प्रज्वलित की जाती है, जिसमें पहली आहुति हृदय–कमल के अर्पण के रूप में ही दी जाती है।

इसके उपरान्त लेखक विवाह के अवसर का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करके इसकी पवित्रता तथा मार्मिकता का वर्णन करता है। विवाह के कुछ समय पहले खुशियाँ मनाई जाती हैं, किन्तु जैसे ही विवाह वाला दिन आता

है, उस दिन एक ओर तो कन्या का दिल डूबने लगता है; दूसरी ओर, माता–पिता, भाई–बहन का हृदय प्रेम के आँसुओं में डूब जाता है। लेखक के मत के अनुसार इस दिन कन्या की स्थिति संकल्पहीन होती है।

उस लड़की को अपने आपका ज्ञान नहीं होता है, तभी तो वह डगमगाती है और सगे–सम्बन्धी या सहेलियाँ उसे सँभाले रखती हैं। विवाह के एक–दो दिन पहले जब भाई उसके हाथों में मेंहदी लगाता है, तब उसे अपनी कोई ख़बर नहीं होती है और भाई की आँखों में आँसू होते हैं। इस समय जो त्याग वह करती है, उसके समक्ष बड़े–बड़े त्याग भी फ़ीके पड़ जाते हैं।

भाई ने जैसे उसके वैराग्य तथा त्याग को मेंहदी के रंग में रँग दिया हो। उसके कारण समस्त घर में पवित्रता छा जाती है। एक कंगाल का घर भी इस समय भरा–पूरा हो जाता है। कन्यादान के अवसर पर माता–पिता का हृदय एक ओर गंगाजल के समान एकदम पवित्र हो जाता है; दूसरी ओर, पुत्री–वियोग का दुःख, विवाह का मंगलाचार और नयनों की गंगा में स्नान इनके मन को एकाग्र कर देता है। लेखक के मतानुसार आर्य–कन्या का विवाह हिन्दू–जीवन में एक अद्भुत आध्यात्मिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है, जिसे गहरी आँखों से देख कर हमें अपना सिर झुकाना चाहिए। विवाह के समय हवन की सामग्री से एक सतोगुणी सुगन्धि निकल–निकल कर सबको शान्त और एकाग्र करती है। उस समय ध्रुव, सप्तर्षि, चन्द्रमा, देवी–देवता आदि यज्ञ–मण्डप पर विद्यमान हो कर आशीर्वाद देते हैं। विवाह का सारा वातावरण वर के हृदय पर कुछ ऐसा आध्यात्मिक प्रभाव डालता है कि वह सदा के लिए अपने आपको इस देवी के चरणों में अर्पित कर देता है।

अन्त में, लेखक भारतवासियों से कहता है कि वे इस यज्ञ के माहात्म्य को आध्यात्मिक पवित्रता से अनुभव करें। विवाह को कभी भी मख़ौल न समझें। झूठे स्वार्थों के लिए इस आदर्श को नष्ट न करें। कुल जगत् का कल्याण सोचें।

विवेच्य निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व मुखर है। इसमें विचारोत्तेजकता की कमी नहीं है, परन्तु फिर भी यहाँ भावात्मकता का असाधारण वेग मिलता है। आत्मीय मधुर अनुरोध इस निबन्ध की एक अन्य विशेषता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण निबन्धकार पाठक के मन पर पूरा अधिकार कर लेता है, जिससे निबन्ध का प्रथम प्रभाव तो यही होता है कि लेखक के विचारों से सहमत होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। सरल भावुकतापूर्ण शब्दजाल, मोहक वातावरण, स्पष्ट एवं निर्भीक चिन्तन भी इस निबन्ध के कुछ अन्य उल्लेखनीय सबल पक्ष हैं।

2.2.4 निबन्ध 'नयनों की गंगा' का उद्देश्य (कथ्य, प्रतिपाद्य) ः

प्रस्तुत निबन्ध का नाम प्रतीकात्मक है। लेखक ने इस निबन्ध में वास्तव में वेदों–शास्त्रों के प्रमाण से भारतीय विवाह–पद्धति की महत्ता और व्यावहारिक उपयोगिता का भावात्मक उल्लेख किया है। लेखक कन्यादान की भारतीय रीति के प्रबल समर्थक थे। आरम्भ में उन्होंने बताया है कि कन्यादान के समय अपने माता–पिता का घर छोड़ते समय, जो आँसू कन्या की तथा परिवार के अन्य सदस्यों की आँखों से बहते हैं, वे ऐसे पवित्र होते हैं, जैसे कि गंगा का जल। गंगा के जल से अधिक पावन वे नयनों के नीर को मानते हैं। इससे कुटिलता एवं नीचता दूर हो जाती है, हृदय फूल की तरह खिल उठता है। लेखक का आग्रह है कि प्रत्येक मानव को इस पवित्र गंगा के जल में अवश्य स्नान करना चाहिए। यह हर किसी के लिए कल्याणकारी है – माता–पिता के लिए, भाई–बहनों के लिए, सखियों के लिए सम्बन्धियों और कन्या के लिए क्योंकि सभी शुभ हृदय से उत्सव

में शामिल होते हैं और नयनों की इस गंगा में स्नान करते हैं। कदाचित् लेखक यह कहना चाहते हैं कि इसी बहाने वे अपने जीवन के तनावों को कुछ देर के लिए भूल सकते हैं। पश्चिमी देशों की झूठी और दिखावे की शारीरिक स्वतन्त्रता ने इस उत्सव के आध्यात्मिक पक्ष को लील लिया है। इसका दुष्परिणाम भी प्रत्यक्ष है। "कोई अखबार खोल कर देखो, उन देशों में पति और पत्नी के झगड़े वकीलों द्वारा जजों के सामने होते हैं और जज की मेज़ पर विवाह की सोने की अँगूठियाँ, काँच के छल्लों की तरह द्वेष के पत्थरों से टूटती हैं। गिरजे में कल के बने हुए जोड़े आज टूटे और आज के बने जोड़े कल टूटे।"

लेखक ने आगे बताया है कि भारतीय विवाह–पद्धति कितनी भावात्मक एवं महत्त्वशाली है। दूसरे देशों के मुक़ाबले में भारतीय विवाह–पद्धति से हुए विवाह ही सफल हैं। लेखक भारतीयों को, जो इस आदर्श को भूलते जा रहे हैं, सन्देश देता है कि इस आदर्श का पूर्ण अनुभव से पालन करने में कुल जगत् का कल्याण होगा। हे भारतवासियो ! इस यज्ञ–माहात्म्य का आध्यात्मिक पवित्रता से अनुभव करो। इस यज्ञ में देवी–देवताओं को निमन्त्रित करने के लिए भक्ति प्राप्त करो और विवाह को कभी मख़ौल न जानो।

यहाँ लेखक का उद्देश्य भारतीय विवाह का महत्त्व बताना है। पश्चिम में विवाह पूर्णतः असफल हो रहे हैं। भारतीय जन भी आज अंधाधुंध उनकी नक़्ल कर रहे हैं और अपने रीति–रिवाज और अपने आदर्श भूलते जा रहे हैं।

लेखक ने इस निबन्ध द्वारा यह सन्देश दिया है कि हमें विवाह–संस्कार, रीति–रिवाज आदि नहीं भूलने चाहिएँ। पूरा परिवार मिल कर विवाह का आनन्द उठाए। लड़की को भी दिलासा देना चाहिए कि 'विवाह' एक पवित्र नाता है, जो कि ईश्वर की देन है।

2.2.5 सप्रसंग व्याख्या ः

"कवि को देखिये, अपनी कविता के रस–पान से मत्त हो कर वह अन्तःकरण के भी परे आध्यात्मिक नभोमण्डल के बादलों में विचरण करता है। ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के मन्दिर के बाहर के घेरे, इनमें जा कर कवि जरूर सोता है। उसका अस्थि–मांस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। कवि वहाँ ब्रह्म–रस को पान करता है और अचानक बैठे बिठाये श्रावण–भादों के मेघ की तरह संसार पर कविता की वर्षा करता है।"

प्रसंग ः प्रो॰ पूरन सिंह द्वारा रचित 'नयनों की गंगा' नामक निबन्ध में लेखक प्रारम्भ में आँसुओं के महत्त्व का प्रतिपादन करता हुआ इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रत्येक कलाकार के हृदय में प्रेम का तत्त्व रहता है। इन पंक्तियों में लेखक कवि के विषय में इसी सत्य का प्रतिपादन कर रहा है।

व्याख्या ः कवि अपनी कविता के रस का पान करता हुआ ऐसे लोक में पहुँच जाता है, जो उसके भीतरी हृदय से भी परे है। इसे आध्यात्मिक लोक कहते हैं। इस लोक में प्रेम के बादल छाये रहते हैं। ये बादल कवि की आत्मा में भी समाये रहते हैं और उसकी निश्छल समाधि के बाहर भी। वास्तव में कवि अपने भीतर और अपने से बाहर चारों ओर के संसार में प्रेम के बादलों को ही देखता है। उसका हाड़–माँस का शरीर उन बादलों में घुल–मिल जाता है। यह स्थिति ब्रह्म के आनन्द में लीन मानो एक साधक जैसी ही होती है। इस ब्रह्मानन्द में लीन कवि बैठे बिठाये अचानक सावन–भादों के बादलों के समान संसार पर कविता की वर्षा करता है।

गद्य–सौष्ठव ः इन पंक्तियों में कवि ने यही बताना चाहा है कि कविता का जन्म कवि के प्रेमपूर्ण हृदय से ही होता है और यह प्रेम आध्यात्मिक धरातल का ही होता है। इस दृष्टि से कवि एक साधक के समान है। जिस प्रकार ईश्वर के ध्यान में लीन किसी साधक को अपने भीतर और बाहर आनन्द–ही–आनन्द दिखाई देता है। जिस तरह एक साधक को अपने शरीर की होश नहीं रहती है, ठीक उसी तरह एक कवि भी अपने शरीर के अस्तित्व को भूल जाता है। कविता के मूल में कवि की ऐसी ही अनुभूति रहती है। तभी तो कविता जन–मानस को रस से भाव–विभोर कर देती है।

2.2.6 कठिन शब्दों के अर्थ ः

हाथ ख़ाली...माला तो हो= मनुष्य को ख़ाली हाथ जा कर कुछ न मिलेगा। कम–से–कम आँखों की पलकों के हाथ में (आँसू रूपी) मोतियों की एक माला तो होनी चाहिए।

गुमराह	=	पथभ्रष्ट।
नयन	=	आँखें।
नीर	=	आँसू।
नज़दीक	=	निकट, पास, समीप।
विचरण	=	घूमना।
अश्रु	=	आँसू।
शरीर	=	देह, काया।
चरण	=	क़दम, पैर।
त्रिकालदर्शी	=	शिव, जो तीनों कालों को जानता हो।
प्राचीन	=	पुराना।
नवीन	=	नई।
पद्धति	=	प्रणाली।
आत्मिक	=	आत्मा से सम्बन्धित।
अद्‌भुत	=	विचित्र, अनोखी, विलक्षण।

2.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न ः

1. प्रो॰ पूरनसिंह का जीवन–परिचय बताएँ।
2. निबन्ध 'नयनों की गंगा' का सार लिखिए।
3. निबन्ध 'नयनों की गंगा' का उद्देश्य लिखिए।
4. अग्रलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) धन्य हैं वे नयन जो कभी–कभी प्रेम–नीर से भर जाते हैं। प्रतिदिन गंगा–जल से तो स्नान होता ही है, परन्तु जिस पुरुष ने नयनों की प्रेम–धारा में कभी स्नान किया है, वही जानता है कि इस स्नान में मन के

मलिन भाव किस तरह बह जाते हैं; अन्तःकरण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है; हृदय–ग्रंथि किस तरह खुल जाती है; कुटिलता और नीचता का पर्वत कैसे चूर–चूर हो जाता है।

(ख) सावन–भादों की वर्षा के बाद वृक्ष जैसे नवीन कोंपलें धारण किये हुए एक विचित्र मनोहारिनी छटा दिखाते हैं, उसी तरह इस प्रेम–स्नान से मनुष्य की आन्तरिक अवस्था स्वच्छ, कोमल और रसभीनी हो जाती है। प्रेम–धारा के जल से सींचा हुआ हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। हृदयस्थली में पवित्र भावों के पौधे उगते, बढ़ते और फलते हैं।

(ग) परन्तु ज्यों–ज्यों विवाह के दिन नज़दीक आते रहते हैं, त्यों–त्यों विवाह होने वाली कन्या अपनी जान को हार रही है, स्वप्नों में डूब रही है। उसके मन की अवस्था अद्भुत है, न तो वह दुखी ही है और न रजोगुणी खुशी से ही भरी है।

पाठ संख्या : 2.3 **लेखक ः डॉ॰ कृष्ण भावुक**

‘कछुआ—धर्म’
(पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी)

पाठ की रूपरेखा ः

2.3.0 उद्देश्य
2.3.1 प्रस्तावना
2.3.2 पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व
2.3.3 गुलेरी के प्रमुख निबन्ध
2.3.4 निबन्ध ‘कछुआ—धर्म’ का सार
2.3.5 निबन्ध ‘कछुआ—धर्म’ का मन्तव्य अथवा सन्देश
2.3.6 सप्रसंग व्याख्या
2.3.7 कठिन शब्दों के अर्थ
2.3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.3.0 उद्देश्य ः

2.3.1 प्रस्तावना ः

2.3.2 पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व ः

प्रायः लोग यह जानते हैं कि पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी मात्र एक कहानीकार थे और उनकी विशेष रूप से प्रसिद्ध कहानी ‘उसने कहा था’ है। यह कहानी सन् 1915 ई॰ में ‘सरस्वती’ नामक पत्रिका में पहली बार छपी थी। यह ठीक है कि गुलेरी जी ने अपने जीवन में लिखा तो बहुत कम है, परन्तु वह परिमाण में कम होते हुए भी गुणवत्ता की दृष्टि से अत्यन्त उच्च स्तर का है। वास्तव में उन्होंने काव्य, निबन्ध, जीवनचरित आदि विधाओं के अतिरिक्त संस्मरण और समीक्षापरक साहित्य भी काफ़ी मात्रा में लिखा था, किन्तु अन्यान्य कारणों से वह बहुत वर्षों तक प्रकाशित न हो पाया।

श्री प्रेम पखरोलवी लिखते हैं – ”गुलेरी जी की गणना द्विवेदी—युग के प्रख्यात निबन्धकारों में होती है। उनकी ऐसी प्रभावकारी एवं रोचक रचनाएँ ‘समालोचक’, ‘सरस्वती’, ‘मर्यादा’, ‘इन्दु’, ‘प्रतिभा’ और ‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’ आदि प्रसिद्ध एवं जनप्रिय पत्रिकाओं में छपा करती थीं।”

गुलेरी जी का प्रथम श्रेष्ठ निबन्ध 'सोऽहम्' सबसे पहले उन्हीं के द्वारा सम्पादित पत्र 'समालोचक' में अगस्त सन् 1903 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। आपके अनेक चर्चित निबन्ध, शोधपरक आलेख और टिप्पणियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

डॉ॰ मनोहरलाल ने उनकी जन्मशती सन् 1983 ई॰ में उनकी प्रतिनिधि कृतियाँ 'गुलेरी–साहित्यालोक' नाम से प्रकाशित की थीं। उसमें सुधी समीक्षकों के अभिमत भी संकलित किए गए थे। उस बृहद् महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का विमोचन करते हुए मनोवैज्ञानिक कथा–साहित्य के अग्रदूत श्री जैनेन्द्र कुमार ने ये विचार व्यक्त किए थे –

"गुलेरी जी विलक्षण विद्वान् थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनमें ग़ज़ब की ज़िन्दादिली थी और उनकी शैली भी अनोखी है। गुलेरी जी न केवल विद्वत्ता में अपने समकालीन साहित्यकारों से ऊँचे ठहरते हैं, अपितु एक दृष्टि से वह प्रेमचन्द से भी ऊँचे साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द ने समसामयिक स्थितियों का चित्रण तो बढ़िया किया है, पर व्यक्ति मानस के चितेरे के रूप में गुलेरी का जोड़ नहीं है। प्रेमचन्द अपने साहित्य में सामाजिक संबंध ाों के चित्रण से आगे नहीं बढ़े, जबकि गुलेरी ने 'उसने कहा था' में 'मानवतावाद' की आत्मा का स्पर्श कर लिया है। आश्चर्य है कि उनके निधन के इतने वर्ष बाद भी उनकी रचनाएँ प्रामाणिक पाठ के साथ पुस्तक–रूप में नहीं आई आ पाईं। 'गुलेरी–साहित्यालोक' इस दिशा में एक प्रेरक प्रयास कहा जाएगा।"

आगे चल कर सन् 1991 ई॰ में डॉ॰ मनोहरलाल ने ही 'गुलेरी–रचनावली' नामक एक बृहद् ग्रंथ में गुलेरी जी के विभिन्न निबन्धों, लेखों, कहानियों, साक्षात्कारों, संस्मरणों, जीवनचरितों, टिप्पणियों, पत्रों आदि को क्रमवार संकलित किया है। इस ग्रंथ को दो खण्डों में प्रकाशित किया गया है। खण्डों के कुछ शीर्षक इस प्रकार है – कथा/कहानी, निबन्ध/लेख, पुरानी पाण्डुलिपियाँ, संस्मरण, इंटरव्यू, वैदिक और पौराणिक साहित्य, लोक और कला, राजनीति/धर्म, समीक्षाएँ, पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, काव्य, जीवनचरित, पुरानी हिन्दी, भाषा, इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, विविध टिप्पणियाँ, पत्र–साहित्य, संस्कृत साहित्य तथा अंग्रेजी साहित्य इत्यादि। ऐसा इसलिए किया गया है, ताकि उनकी तलस्पर्शी गुरु–गम्भीर, बहु–आयामी सृजनशीलता का परिचय हो सके। यही नहीं, प्रत्येक रचना के प्रामाणिक पाठ के साथ उसके प्रथम प्रकाशन का विवरण भी दिया है। गुलेरी जी की यह गद्य–सृष्टि उस समय खड़ीबोली के बन रहे रूप–स्वरूप की प्रामाणिक परिचायिका है।"

डॉ॰ मनोहरलाल ने आगे यह वक्तव्य भी दिया है – "गुलेरी जी को कहानीकार के अतिरिक्त निबन्धकार के रूप में जो प्रतिष्ठा मिली है, उसका आधार उनके व्यक्तिव्यंजक निबन्ध 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि मोहिं कुठाँव' प्रमुख हैं। ये निबन्ध सन् 1919 और 1920 ई॰ में 'प्रतिभा' (पत्र) में 'कण्ठा छद्म' नाम से छपे थे। इनसे पहले उनके दो निबन्ध 'काशी' तथा 'काशी के नूपुर और काशी की नींद' क्रमशः 'समालोचक' (1906) तथा 'भारतमित्र' (1916) में छप चुके थे, जिन पर आलोचकों की नज़र प्रायः नहीं पड़ी। ये निबन्ध उनकी भावात्मक शैली के द्योतक हैं।"

वास्तव में गुलेरी जी के इन निबन्धों से उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य और बहुपठन का ही प्रमाण मिलता है। श्री प्रेम पखरोलवी अपने पूर्वोक्त लेख में लिखते हैं – "वे प्रत्यक्षतः व्यावहारिक जीव थे।.....अनुसंधान की ललक एवं खोज की चाहत आपके निबन्धों में बराबर देखी जा सकती है। गुलेरी जी के आलेख लालित्यपूर्ण हैं...और लेखन की मूल संवेदना मानवीय भाईचारे एवं करुणा को छूती है।"

निधन ः इनका निधन सन् 1922 ई॰ में हुआ था।

2.3.3 गुलेरी के प्रमुख निबन्ध ः

जयपुर से अपने संपादन में निकलने वाले 'समालोचक' नामक पत्र के द्वारा गुलेरी जी ने जिन निबन्धों का प्रकाशन किया, उनके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी द्रष्टव्य है – "ऐसा गंभीर और पांडित्यपूर्ण हास, जैसा इनके लेखों में रहता था, और कहीं देखने में न आया। अनेक गूढ़ शास्त्रीय विषयों तथा कथा–प्रसंगों की ओर विनोदपूर्ण संकेत करती हुई उनकी वाणी चलती थी। इसी प्रसंगगर्भत्व (एल्यूसिवनेस) के कारण इनकी चुटकियों का आनन्द अनेक विषयों की जानकारी रखने वाले पाठकों को ही विशेष मिलता था। इनके व्याकरण ऐसे रूखे विषय के लेख भी मज़ाक से ख़ाली नहीं होते थे। यह बेधड़क कहा जा सकता है कि शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित वक्रता गुलेरी जी में मिलती है और किसी लेखक में नहीं। इनके स्मित हास की सामग्री ज्ञान के विविध क्षेत्रों से ली गई है। अतः इनके लेखों का पूरा आनन्द उन्हीं को मिल सकता है, जो बहुज्ञ या कम–से–कम बहुश्रुत हैं।" गुलेरी जी की अनेक रचनाएँ सन् 1903 से ले कर 1922 ई॰ तक के मध्य ही प्रकाशित हुई थीं। इनके प्रसिद्ध निबन्धों में से ये नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं – सुदर्शन की दृष्टि, इण्डियन नेशनल कांग्रेस, आँख, वेद में पृथ्वी की गति, वंशच्छेद, ब्रह्मदेवता, विक्रमोर्वशी की मूल कथा, संगीत की धुन, काशी, समालोचना–प्रसंग, धर्मपरायण रीछ, जयसिंहप्रकाश, अमंगल के स्थान पर मंगल शब्द, कछुआ धर्म, जालहंस की सुभाषित मुक्तावली, आत्मघात, देवकुल, पाणिनि की कविता, न्याय–घण्टा, पुरानी पगड़ी तथा पुरानी हिन्दी इत्यादि। इन सबमें 'संगीत की धुन' शीर्षक निबन्ध वस्तुतः निबन्ध से कहीं अधिक एक भेंट–वार्त्ता या साक्षात्कार ही है। सन् 1905 में गुलेरी जी ने अंग्रेज़ी में संगीत–अंकन–पद्धति के अनुसार हिन्दी में ठीक वैसी ही पद्धति के आविष्कर्त्ता भारत के महान् संगीतज्ञ श्री विष्णुपन्त दिगम्बर प्लुस्कर के साथ अपनी यह भेंट–वार्त्ता छापी थी। कहते हैं कि हिन्दी साहित्य में इसी रचना से 'साक्षात्कार' नामक गद्य–विधा का श्रीगणेश हुआ था।

गुलेरी जी के निबन्धों के संबंध में डॉ॰ विद्याधर शर्मा गुलेरी 'भाषा' पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में यह वक्तव्य देते हैं – "यूँ तो पंडित जी के निबन्धों की संख्या सौ के क़रीब है, परन्तु उनके केवल 25–26 निबन्धों का प्रकाशन ही नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 'गुलेरी–ग्रंथ' के अन्तर्गत कर पाई है। 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक से गुलेरी जी के कई निबन्ध 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के भाग दो में प्रकाशित हुए थे, जिनमें से शौरसेनी, पैशाची, अपभ्रंश, शारंगधर–पद्धति से उद्धृत प्रकरण प्रमुख हैं। प्रसिद्ध जैन आचार्य मेरुतुंग का 'प्रबन्ध–चिन्तामणि', जो सं॰ 1361 में लिखा गया था, पर गुलेरी जी ने विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएँ लिखीं। पुराने हिन्दी कवि राजा मुंज के कर्तृत्व को वे ही स्वयं प्रकाश में लाए।"

आगे लिखते हैं – "खड़ीबोली, जिसे गुलेरी जी मलेच्छ भाषा का नाम देते हैं, के अध्ययन में उन्होंने भूषण कविराज की 'शिवा बावनी' पर मुसलमानी प्रभाव को स्वीकारा है।"

गुलेरी जी ने हेमचन्द्र की व्याकरणयुक्त रचना पर भी बहुत अधिक लिखा था। हेमचन्द्र के व्याकरण के वे एक अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। वे ही इस व्याकरण का अधिकांश भाग 'पुरानी हिन्दी' नामक ग्रंथ के माध्यम से प्रकाश में लाए। उन्होंने अनेक सत्य तथ्य उस ग्रंथ में उद्घाटित किये थे। सौ–से–भी–अधिक अवतरणों एवं पाण्डित्यपूर्ण विवेचन से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी किस प्रकार पारंपरिक और सार्वदेशिक भाषा का स्थान ग्रहण करती हुई आगे बढ़ी। इसके समन्वय के लिए उन्होंने स्थान–स्थान पर प्रान्तीय भाषाओं, विशेषतः ब्रजभाषा के सर्वमान्य रूपों, प्रयोगों आदि के शब्द–प्रतिशब्द उदाहरण भी बराबर दिए हैं। हिन्दी भाषा की सार्वदेशिक राष्ट्रीय प्रवृत्ति और प्रकृति का अनुशीलन करने के लिए यह प्रबन्ध बड़े काम का माना जाता है।

डॉ॰ विद्याधर गुलेरी जी लिखते हैं – "सन् 1904 से ले कर सन् 1917 ई॰ तक का समय गुलेरी जी के जीवन में विशेष महत्त्व रखता है। इसी समय में उन्होंने विशेष अध्ययन किया व सौ से ऊपर लेख लिखे, जिनके फलस्वरूप वे पुरातत्त्व, भाषा–तत्त्व, प्राचीन इतिहास, संस्कृत, वैदिक संस्कृत, पालि तथा प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में गिने जाने लगे।"

गुलेरी जी की वास्तविक प्रतिभा का उत्कर्ष द्विवेदी–युग के अन्य समकालीन निबन्धकारों की तुलना में सहज ही आँका जा सकता है। इनके निबन्धों को उनकी विषयगत व्यापकता और विविधता के कारण किसी एक विशिष्ट कोटि में सीमित करके परखना प्रायः असंभव ही प्रतीत होता है।

गुलेरी जी पुरातत्व के मान्य विद्वान् थे, किन्तु कहानी और निबन्ध के क्षेत्र में उनका स्थान अन्यतम है। उन्होंने संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी अपने निबन्धों को व्यावहारिक एवं सरल बनाया है। विषयानुकूल भाषा को परिवर्तित करना इनको अभीष्ट था, साथ ही छोटे–छोटे एवं स्पष्ट वाक्यों का प्रयोग आपने निबन्धों में मिलता है। मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। उर्दू तथा अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग इन्होंने बिना किसी संकोच के किया है। इनके निबन्धों की शैली प्रायः तत्सम–प्रधान है। गुलेरी जी के निबन्धों में 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि मोहि कुठाँव' दोनों बहुचर्चित निबन्ध हैं। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए –

"बकौल शेक्सपीयर जो मेरा धन छीनता है, वह कूड़ा चुराता है, पर जो मेरा नाम चुराता है वह सितम ढाता है। आर्य समाज ने मर्मस्थल पर वह मार की है कि कुछ कहा नहीं जाता। हमारी ऐसी चोटी पकड़ी है कि सर नीचा कर दिया। ग़ैरों ने तो गाँठ का कुछ नहीं दिया, पर इन्होंने तो छोटे–छोटे शब्द छीन लिये। इसी से कहता हूँ कि 'मारसि मोहि कुठाँव' अच्छे–अच्छे पद तो यों सफ़ाई के लिए हैं कि इस पुरानी जमी हुई दुकान का दिवाला ही निकल गया।"

इस प्रकार गुलेरी जी एक सशक्त और सफल निबन्धकार के रूप में उभर कर हमारे सामने आते हैं। विषयों की विविधता के अतिरिक्त उनके निबन्धों में भारतीय और पश्चिमी निबन्ध–रचना की शैलियों का भी समन्वय पाया जाता है। जिस प्रकार उनकी अछूती कहानी 'उसने कहा था' में सबसे पहली बार हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान और मनोवैज्ञानिक कथा–साहित्य की बाद में लोकप्रिय होने वाली चेतनाप्रवाह–पद्धति और पूर्वदीप्ति–पद्धति का स्पष्ट प्रयोग हुआ है, ठीक उसी प्रकार निबन्धगत शैली में भी नवीनता और मौलिकता के अनेक आयामों का भी सूत्रपात देखा जा सकता है।

निष्कर्ष : पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी एक कहानीकार के अतिरिक्त कवि, जीवनीचरितकार, संस्मरण–लेखक और साक्षात्कार जैसी सशक्त गद्य–विधा के आविष्कर्त्ता के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। एक सफल और सशक्त कहानीकार के बाद उनकी साहित्यिक देन को एक मौलिक निबन्धकार के रूप में अवश्य रेखांकित किया जा सकता है। उन्होंने 'निबन्ध' नामक साहित्यिक विधा को अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, ज्ञान और कलात्मकता से लैस करके हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली के उद्‌भव–काल में विशेष योगदान किया है।

2.3.4 निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का सार ः

भारतीय सभ्यता मूलतः एक नम्रता–प्रधान सभ्यता रही है। हमने अपने आप में सिमट जाना सीखा है। जिस प्रकार एक कछुआ अपने ऊपर वार होने पर अपनी गर्दन अपनी ढाल में ही छिपा लेता है और मारने वाले पर आगे बढ़ कर कभी भी वार नहीं करता है, इसी प्रकार भारतवासियों ने भी कठिनाइयों का मुक़ाबला करने की अपेक्षा ख़ामोश रह कर स्वयं मिट जाना ही बेहतर समझा है। भारतीयों की इसी प्रकृति को पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने **कछुआ–धर्म** कहा है।

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि जहाँ गुरु की निन्दा हो रही हो अथवा कोई झूठी कथा हो रही हो, वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि वह या तो अपने कान बन्द कर ले अथवा वहाँ से उठ कर चल दे। मनु जी ने यह उपाय नहीं बताया है कि निन्दा करने वाले का जूते या मुक्के से जबड़ा तोड़ दो, ताकि वह आइन्दा ऐसी हरकत न करे। इसी 'कछुआ–धर्म' का यह परिणाम हुआ कि आर्यों के भारत पर आक्रमण करने के समय भारतीय लोग भाग खड़े हुए। यह नहीं हुआ कि वे डट कर उनका मुक़ाबला करते। इसी प्रकार पुराने आर्यों की अपने भाई असुरों से अनबन हो गई। असुर लोग असीरिया में रहना चाहते थे और आर्य लोग सदा सप्तसिंधु प्रदेश में ही बसना चाहते थे। इसके परिणामस्वरूप आर्य लोग आगे चल दिए। विष्णु और उसके साथी ऊखल, मूसल और सोम को कूटने का पत्थर लिए मूँज़वत् हिन्दुकुश के एक मात्र दर्रा ख़ैबर से होते हुए सिन्धु घाटी में पहुँच गए और भारत की हरी–भरी धरती पर ये बुलबुलों के समान चहकने लगे, किन्तु आर्यों को ईरान के अँगूरों का चस्का पड़ा हुआ था और साथ ही गूलों अर्थात् मूँज़वत् पहाड़ की सोमलता का चस्का पड़ा हुआ था। सोमलता लेने जाते, तो गन्धर्व उन्हें मारने दौड़ते। हाँ, कुछ गन्धर्व लालच में आ कर चमकता नक़द–नारायण ले कर 'सोमलता' बेचने को तैयार हो जाते। उस समय का सिक्का गौएँ थीं। कुछ समय बाद कुछ लोग, जो सीमा पर रहते थे, यहाँ पर सोम बेचने चले आते और कोई आर्य जन सीमा–प्रान्त पर जा कर भी ले आया करते थे, लेकिन मोल ठहराने में उन्हें बड़ी हुज्जत होती थी। गन्धर्वों ने आर्यों की कमज़ोरी का लाभ उठा कर सोम की क़ीमत बढ़ा दी। सफ़र लम्बा हो गया। रास्ते में डाके मारने वाले 'वाल्हीक' आ बसे। अतः सोम मिलने में कठिनाइयाँ आने लगीं। तब यह तो हुआ कि आर्यों ने सोमरस के स्थान पर पूतिक लकड़ी का ही रस पीना शुरु कर दिया, किन्तु यह किसी को नहीं सूझा कि यहाँ की उपजाऊ भूमि में ही सोम की खेती कर ली जाए। बाद में जब पंचनद (सिन्धु प्रान्त) में 'वाल्हीक' आ कर बस गए, तो दण्ड–कमण्डल लेकर ऋषि जन वहाँ से भाग खड़े हुये।

इधर बहुत वर्ष पीछे समुद्र पार के देशों में दूसरे धर्म पक्के हो चले। वे लूटते थे, मारते थे और बेधर्म भी कर देते थे। इन लोगों के परिणामस्वरूप भारतीयों ने अपनी समुद्र–यात्रा बन्द कर दी। पुर्तगाली यहाँ व्यापार करने आये थे, किन्तु उन्हें अपने धर्म का प्रचार करने की बात भी सूझी। भारतीयों की कछुआ–प्रवृत्ति को महसूस कर उन्होंने ऐसे अनेक तरीक़े ढूँढ निकाले, जिनसे भारतीयों को सरलता से अपने धर्म मे खींच लिया जाए। एक तरीक़ा यह था कि पादरी लोग यह कह देते कि उन्होंने जल पीने और नहाने वाले कुओं में 'अभक्ष्य' (हड्डी, माँस इत्यादि अखाद्य पदार्थ) डाल दिया है। बस फिर क्या था, गाँव के लोग पानी छोड़ कर ईसाई हो गए। किसी ने यह नहीं सोचा कि कुल्ले ही कर लें, घड़े फोड़ दें या कै ही कर डालें। जिसने भी ऐसे कुएँ का पानी पिया, वह 'हिन्दू' नहीं रहा, थक–हार कर ईसाई बन जाता। बम्बई जाने में भी प्रायश्चित्त कर दिया गया।

इसी कछुआ–धर्म का यह नतीजा हुआ कि यदि हिन्दू को यह कह दिया गया कि विलायती खाँड (चीनी) में हड्डी इत्यादि पड़ती है, तो वह चीनी ही खाना छोड़ देता। यह नहीं कि गन्ने की खेती बढ़ाए और अपने देश की दशा सुधारे। यदि फिर भी यह कहा जाए कि देशी खाँड बेचने वाले भी वही उपाय करते हैं, तो हिन्दू मैली खाँड खाने लगेगा और यदि यह कह दिया जाए कि मैली खाँड सस्ती जावा या मोरिस की खाँड है, तो वह गुड़ पर ही उतर आएगा और अन्त में मीठा खाना ही छोड़ देगा। यह न सोचेगा कि मीठे के बिना उससे भला कब तक रहा जायेगा ? उसका कछुआ–धर्म कछुआ भगवान् की तरह पीठ पर 'मंदराचल' की मथनी चला कर समुद्र से नये–नये रत्न निकालने के लिए नहीं है, वह तो ढाल के भीतर और भी सिकुड़ जाने के लिए है।

वास्तव में मानव मात्र का ही यह स्वभाव है कि वह दैहिक, दैविक और भौतिक तीन प्रकार के दुःख होने पर उन्हें मिटाने के उपाय किया करता है। बौद्धों ने जीवन मात्र को ही समस्त दुखों की जड़

घोषित करके प्रार्थनाएँ करनी शुरू कर दीं।

निबन्ध के अन्त में लेखक पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जीवन के प्रति भारतीयों की ऐसी वैराग्य–भरी ग्लानि पर विस्मय व्यक्त करते हैं। वे यह चुटकी लेते हैं कि सौ या उससे भी अधिक वर्ष जीने का लक्ष्य रख कर चलने वाले भारतीय तो कृषि के बिना ही फ़सलें पक जाने और देश के पत्ते–पत्ते में मधु मिलने में आस्था रखते हैं। उन्हें ऐसा वैराग्य कदापि शोभा नहीं देता है।

2.3.5 निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का मन्तव्य अथवा सन्देश ः

भारतेन्दु–काल के प्रायः सभी हिन्दी लेखक समाज के दोषों को एक–एक कर समाज के सामने उघाड़ने का सफल प्रयत्न करते थे। समाज की दुर्बलताओं, समाज में प्रचलित कुरीतियों को देखने और उनको साधारण जनता में प्रस्तुत करने का एक सामान्य लक्ष्य उस काल के हिन्दी–लेखकों के सामने था। गुलेरी जी ने भी अपने इस लेख में व्यंग्यपूर्ण शैली में भारतीयों की संकीर्णता, अनुदारता तथा अपने को बदलती परिस्थितियों के अनुसार न ढालने की दुर्बलता पर चिन्ता व्यक्त की है। उन्हें इस बात का दुःख है कि हम किसी भी संकट या बाहरी विपत्ति का सामना करने की क्षमता नहीं रखते हैं। संकट या समस्या से सदा भागने की प्रवृत्ति हमारी सीमाओं को बहुत ही छोटा किये जा रही है। हममें अत्याचारी का सामना करने का बल नहीं रहा है। हम धर्म–सम्बन्धी संकीर्णता में बँध का अपने बन्धुओं को खोते जा रहे हैं। धर्म–विधर्म, भक्ष्य–अभक्ष्य के चक्कर में पड़ कर हम सब अपनी मूल शक्ति को ही खोते जा रहे हैं।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य देशवासियों को अपनी गिरती हुई दशा के प्रति सचेत करना और सदैव पीछे हटने की कायरतापूर्ण रक्षात्मक (Defensive) प्रवृत्ति को छोड़ कर आगे बढ़ना और आक्रमण करने वाले पर पहले चोट करने का स्वभाव बनाने की प्रेरणा देना है। उस समय के साथ–साथ आज की परिस्थितियों में भी इस लेख का सर्वाधिक महत्त्व है।

एक आलोचक के शब्दों में – "उनका अभिप्राय सोई हुई जाति को एक कचोट दे कर अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध जगाना था। खिल्ली के बीच में जो एक गहरी टीस है, उसे अनुभूत करने के बाद ही गुलेरी जी के इस प्रयास की महत्ता समझ में आती है।"

भाषा पर लेखक का अपूर्व अधिकार है। इसी से गाम्भीर्य, व्यंग्य, विनोद, पाण्डित्य और चुलबुलापन एक साथ अत्यन्त प्रभावी ढँग से प्रस्तुत किये गये हैं। *'तीन लम्बे डग भरने वाले विष्णु ने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा और न जम कर मैदान लिया।' 'ये दमड़ीमल के पोते करोड़ीचन्द', 'मोल ठहराने में बड़ी हुज्जत होती थी, जैसे कि तरकारियों का भाव ठहराने में कुँजड़ियों से हुआ करती है'* इत्यादि अनेकानेक उदाहरण इस निबन्ध में भरे पड़े हैं।

निबन्धकार के मतानुसार आत्मरक्षात्मक (Offensive) नीति अपनाने के कारण ही भारतीय जन आक्रामक नीति के पोषक विदेशियों की राजनीतिक चालों से सदैव मुँह की खाते रहे हैं। सो, आज (पराधीनता–काल में) हमे आक्रामक पद्धति और नीति अपना कर अंग्रेज़ों को मुँह–तोड़ जवाब देना सीखना चाहिए।

यद्यपि पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अहिंसा, प्रेम, शान्ति और सत्य जैसे गांधीवादी विचारों में पूर्ण आस्था रखते थे, तथापि देश की तत्कालीन स्थितियों में वे 'अहिंसा' को कायरता का लक्षण मान कर महाकवि 'दिनकर' के खण्ड–काव्य 'कुरुक्षेत्र' में रेखांकित कथ्य न्यायार्थ युद्ध का समर्थन भी करते प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि 'कछुआ–धर्म' और शुतुरमुर्गी नीति अपना कर एक पराधीन देश कभी भी स्वदेश

की धरती पर अनधिकृत रूप से जमे बैठे अंग्रेज़ जैसे विदेशियों को देश से बाहर नहीं खदेड़ सकता है। सो, न्याय–प्राप्ति के लिए गुलेरी जी भारतीयों को पुराना **'कछुआ–धर्म'** छोड़ कर आक्रामक ढँग अपनाने की एक सार्थक प्रेरणा देते हैं। यह जन–जागरण करना ही इस निबन्ध का प्रमुख उद्देश्य और सन्देश बन पड़ा है।

2.3.6 सप्रसंग व्याख्या ः

"भला जिस देश में बरस में दो ही महीने घूम–फिर सकते हों और समुद्र की मछलियाँ मार कर नमक लगा कर सुखा कर रखना पड़े कि दस महीने शीत और अँधियारे में क्या खायेंगे, वहाँ जीवन में इतनी ग्लानि हो तो समझ में आ सकती है, पर जहाँ राम के राज में 'अकृष्टपच्या पृथ्वी' पुटके–पुटके मधु' बिना खेती फ़सलें पक जायें और पत्ते–पत्ते में शहद मिले, वहाँ इतना वैराग्य क्यों ?"

– (**'निबन्ध–परिवेश'**, पृष्ठ 50)

प्रसंग ः निबन्धकार पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 'कछुआ–धर्म' नामक निबन्ध के अन्त में भारतीयों की जीवन के प्रति उदासीनता पर अपना दुःख प्रकट करते हैं। दुखों से छुटकारा पाने के अनेक उपाय भारत में समय–समय पर सोचे गए। डरपोक क़िस्म के लोगों ने जीवन को सारे दुखों का परिणाम समझ कर यह निष्कर्ष निकाला कि चोर को मारने की बजाय चोर की माँ को ही मारना चाहिए, अर्थात् मनुष्य को यह चोला ही नहीं मिलना चाहिए। यह बात उस देश के लोगों ने सोची, जहाँ एक समय सौ वर्ष जीने की इच्छा लोग करते थे। इसके आगे लेखक ये शब्द कहता है –

व्याख्या ः जिस देश में साल भर में केवल दो महीने लोग घूम सकें और जिन्हें समुद्र की मछलियों को नमक लगा कर, सुखा कर सर्दी और अँधियारे के इस महीनों में खाने के लिए रखना पड़े, उस देश के लोग यदि जीवन के निराश हो कर वैराग्य की बातें करें, तो उसे उचित कहा जा सकता है, किन्तु जिस भारत में बिना खेती के ही फ़सलें पक जाती हों और पत्ते–पत्ते से शहद मिलता हो, उस देश में वैराग्य का क्या काम ? इन पंक्तियों में भारतीयों की वैराग्य–भावना पर दुःख और आश्चर्य प्रकट किया गया है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ न तो अन्न की कमी है और न ही मधुरता की। ऐसे देश के लोग भी यदि जीवन से निराश हो कर जन्म को कोसें, तो बड़े दुःख की बात है। ऐसा तो उस देश के लोग सोचते हैं, जहाँ एक साल में दस महीने वर्षा या तीखी सर्दी के कारण लोग घूम–फिर न सकते हों और लोगों को दस महीने तक भोजन की चिन्ता रहती हो।

2.3.7 कठिन शब्दों के अर्थ ः

भ्रातृव्यस्य वधाय	=	छोटे भाई को मारने के लिए।
सजातानां मध्यमेष्ठयाय	=	भाइयों के विनाश के लिये।
शतगु, सहस्रगु, नवग्वाः, दशश्वाः	=	सौ गाय/हज़ार गाय/नौ गाय/दस गाय रखने वाला।
पापो हि सोमविक्रयो	=	सोमरस का बेचना पाप है।
न तत्र...गमिष्यति	=	यहाँ दिन भर न ठहरें। युगंधर (प्रदेश या स्थान) में पानी पीने वाला भला स्वर्ग में कैसे जायेगा।

मा देहि...निवासम् = हे राम ! आप मुझे गर्भवास न दें।

ज्ञातवेत्थं...जनाः = समझदार लोग ऐसा जान कर फिर माँ के गर्भ को प्राप्त नहीं होते।

2.3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न ः

1. पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का सार लिखिए।
3. निबन्ध 'कछुआ–धर्म' का उद्देश्य लिखिए।
4. अग्रलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) मनुस्मृति में कहा गया है कि जहाँ गुरु की निन्दा या असत्–कथा हो रही हो, वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि कान बंद कर ले या और कहीं उठ कर चला जाए। यह हिन्दुओं के या हिन्दुस्तानी सभ्यता के कछुआ–धर्म का आदर्श है। ध्यान रहे कि मनु महाराज ने न सुनने योग्य की कलंक–कथा के सुनने के पाप से बचने के दो ही उपाय बताये हैं। या तो कान ढक कर बैठ जाओ या दुम दबा कर चल दो। तीसरा उपाय, जो और देशों के सौ में नब्बे आदमियों को ऐसे अवसर पर पहले सूझेगा, वह मनु ने नहीं बताया कि जूता ले कर या मुक्का तान कर सामने खड़े हो जाओ, निन्दा करने वाले का जबड़ा तोड़ दो या मुँह पिचका दो कि फिर ऐसी हरकत न करे। यह हमारी सभ्यता के भाव के विरुद्ध है।

(ख) कछुआ ढाल में घुस जाता है, आगे बढ़ कर मार नहीं करता। अश्वघोष महाकवि ने बुद्ध के साथ चले जाते हुए साधु पुरुषों को यह उपमा दी है – 'देशादनार्येरभिमूयमानान्महर्षयो धर्ममिवापयान्तम्।' अनार्य लोग देश पर चढ़ाई कर रहे हैं। धर्म भाग जा रहा है। महर्षि भी उसके पीछे–पीछे चले जा रहे हैं।

पाठ संख्या : 2.4 **लेखक ः डॉ॰ कृष्ण भावुक**

'ठेले पर हिमालय'
(डॉ॰ धर्मवीर भारती)

पाठ की रूपरेखा ः

2.4.0 उद्देश्य
2.4.1 प्रस्तावना
2.4.2 डॉ॰ धर्मवीर भारती का जीवन–परिचय
2.4.3 निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' का सार
2.4.4 निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' का उद्देश्य
2.4.5 सप्रसंग व्याख्याएँ
2.4.6 कठिन शब्दों के अर्थ
2.4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.4.0 उद्देश्य ः

2.4.1 प्रस्तावना ः

2.4.2 डॉ॰ धर्मवीर भारती का जीवन–परिचय ः

डॉ॰ धर्मवीर भारती नई कविता के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। इनका जन्म 25 दिसम्बर सन् 1926 ई॰ में इलाहाबाद में हुआ था। डॉ॰ बच्चनसिंह ने जन्म–वर्ष 1921 ई॰ दिया है। एक कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार से अधिक 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक के रूप में इनकी ख्याति रही है। इनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का सब लोहा मानते रहे हैं।

ये 'दूसरे सप्तक' के उन बहुचर्चित कवियों में से एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि हैं, जिन्होंने 'नयी कविता' के अजस्र प्रवाह को अद्‌भुत गति एवं चेतना–शक्ति प्रदान की। वे एक स्वस्थ आलोचक, लब्ध–प्रतिष्ठ कथाकार, प्रभावी नाटककार तथा सफल निबन्धकार हैं। लोक–ख्याति के जिन मानदण्डों को उन्होंने कविता के माध्यम से संस्पर्श किया है, वह सचमुच श्रेष्ठ है।

भारती आधुनिक चेतना से सम्पन्न हैं, लेकिन उनकी लगभग समस्त अभिव्यक्ति पौराणिकता से सम्बद्ध है। उनकी समस्त कृतियाँ (विशेषतः कनुप्रिया, अन्धायुग) पौराणिक बनाम आधुनिक हैं। 'अन्धायुग' और 'कनुप्रिया' दो अन्तर्विरोधी मनःस्थितियों की उपज है, परन्तु लेखक सर्वत्र युगीन हलचलों, उत्पातों, विध्वंसात्मक घटनाओं और युद्धजन्य विकृतियों के परिणामस्वरूप उपजी स्थितियों से जुड़ा रहा है।

भारती जी एक जन्मजात प्रतिभा–सम्पन्न कलाकार हैं। यह अलग बात है कि उन्होंने लगातार साहित्य–सेवा और अटूट कलात्मक साधना से उसे सौ गुना बना लिया है। छात्र–जीवन में ही उन्होंने छोटी–छोटी रचनाओं से अपनी रचनात्मक शक्ति का आभास कराया था, जिसे देख कर उनके निकट के लोगों ने उन्हें एवं

असाधारण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के रूप में स्वीकारा था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ये अच्छे अंकों में स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे और वहीं से दो वर्ष के बाद प्रथम श्रेणी में एम॰ ए॰ हिन्दी की उपाधि प्राप्त की थी। यहाँ उनकी एक विशेष उपलब्धि का संकेत करना अप्रासंगिक न होगा कि उनकी असाधारण वाणी–सम्बन्धी प्रतिभा, अद्भुत कार्यकुशलता एवं लगातार स्वाध्याय (अध्ययन और चिन्तन–मनन) को दृष्टि में रख कर उन्हें एक विश्वविद्यालय का सर्वाधिक अध्ययनशील छात्र घोषित किया गया। इसी उपलक्ष्य में अपनी साहित्यिक रुचि और लेखकीय प्रतिभा के कारण ही उन्हें डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा जैसे सुयोग्य निदेशक के निर्देशन में कार्य करने का सुयोग मिला और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही उन्होंने 'सिद्ध साहित्य' जैसे कठिन विषय पर डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त की।

सन् 1959 ई॰ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एक प्रवक्ता के रूप में इनकी नियुक्ति हो गयी और उस नियुक्ति का तन्मयता से उन्होंने निर्वाह भी किया, परन्तु यहाँ उन्हें ऐसा लगा जैसे उनका सर्जक अध्यापकीय वातावरण में घुट गया हो। वे भीतर–ही–भीतर यहाँ से भिन्न किसी ऐसे वातावरण की तलाश में रहने लगे, जहाँ उनका सृजनात्मक पक्ष उभर सके। इस द्वन्द्वात्मक स्थिति पर सन् 1959 में उन्हें विजय मिली, जब बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'धर्मयुग' के प्रधान सम्पादक के रूप में उन्हें काम करने का सुअवसर मिला। इस पत्रिका के सम्पादकीय पद का दायित्व सँभालते ही उन्हें 'टाइम्ज़ ऑफ़ इंडिया' तथा 'भारतीय ज्ञानपीठ' जैसी प्रसिद्ध संस्थाओं से भी प्रकाश में आने का अवसर मिला। यह उनके दायित्व–बोध, कर्मठ स्वभाव, सृजनात्मक कला–नैपुण्य का ही शुभ परिणाम है कि 'धर्मयुग' हिन्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय हिन्दी पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित रही है।

डॉ॰ भारती सप्तकीय परम्परा के प्रमुख स्वर हैं, जिन्होंने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के माध्यम से अभूतपूर्व स्थान प्राप्त किया है। यद्यपि उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी तथा कई आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना भी की है, तथापि उनकी ख्याति का मूलभूत स्तंभ उनकी काव्यात्मक रचनाएँ ही रही हैं। वे हृदय से कवि हैं, इसलिये उनका कवि उनके नाटककार, उपन्यासकार, एकांकीकार और आलोचक पर हावी रहा है।

निधन ः इनका स्वर्गवास 4 सितम्बर सन् 1997 ई॰ में हुआ था।

कृतित्व ः भारती जी ने अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित अपनी कविताओं से हिन्दी काव्य–जगत् में प्रवेश किया। ये एक सफल कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार एवं पत्रकार हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ अग्रलिखित हैं –

1. **कविता–संग्रह** ः ठण्डा लोहा (1952), सात गीत वर्ष, श्री–वर्षा (1980)।
   इनकी 'टूटा पहिया', 'प्रमथ्यू–गाथा' जैसी कवितायें विशेष रूप से चर्चित रही हैं।
2. **खण्ड–काव्य** ः कनुप्रिया (1959)।
3. **काव्य–नाटक** ः अन्धा युग (1954) इसे ध्वनि–रूपक–नाटक भी कहा जाता है।, सृष्टि का आख़िरी आदमी।
4. **अनुवाद** ः देशान्तर (इसमें कुछ विदेशी कविताओं का हिन्दी अनुवाद किया गया है।)
5. **कहानी–संग्रह** ः मुर्दों का गाँव, चाँद और टूटे हुए लोग, बन्द गली का आख़िरी मकान, आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ।
6. **एकांकी–नाटक** ः नदी प्यासी थी।
7. **उपन्यास** ः गुनाहों का देवता, सूरज का सातवाँ घोड़ा।
8. **समीक्षा एवं शोध** ः 'सिद्ध–साहित्य', 'प्रगतिवाद ः एक समीक्षा', 'मानव–मूल्य और साहित्य'।

9. निबन्ध–संग्रह ः 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी–अनकहनी', 'पश्यन्ती'।

10. संस्मरण ः बंगला देश का स्वतन्त्रता–युद्ध। इस युद्ध में भारती जी स्वयं युद्ध–मोर्चे पर गए थे। एक पत्रकार के रूप में इन्होंने बंगलादेश की विजय का आँखों–देखा विवरण इस संस्मरण–ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।

'ठंडा लोहा' में सन् 1946–52 के मध्य रचित कविताएँ हैं। कवि का स्वगत कथन है – "भारती कवितायें कम लिखता है, लेकिन जब लिखता है, तो अपनी रुचि की और अपने ईमान की।" डॉ॰ शिवकुमार मिश्र ने इस दावे को झूठा सिद्ध करते हुए इनके काव्य में कुण्ठा, दमित वासना का विस्फोट, निराशा, भय, अकुलाहट, थकान, स्वस्थ मानसिकता से दूर एक विचित्र–सी निष्क्रिया इत्यादि दिखाई है। भारती की आरम्भिक कविताओं पर ये आरोप काफ़ी सही उतरते हैं। कुछ पंक्तियाँ देखें –

तुम्हारे स्पर्श के ही जुल्म से संयम न टिक पाता,
किसी गुमनाम टोने में बँधा मैं और अकुलाता।।

– (**बादलों की पाँत**, पृष्ठ 22)

कवि की 'इन फ़ीरोजी होंठों पर, बरबाद मेरी ज़िन्दगी', 'उदास मैं', 'फागुन की शाम', 'कच्ची साँसों का इसरार', 'मुग्ध'', 'गुनाह का दूसरा गीत', 'घबराहट की शाम', 'फूलों की मौत' जैसी कविताओं में इसी मांसल प्रेम का लिजलिजापन है। 'कविता की मौत' की इन पंक्तियों की तरह आगे सामाजिक सरोकारों के प्रति भी कवि में जागरूकता पैदा होने लगती है –

भूख, खूँरेज़ी, ग़रीबी हो, मगर आदमी के सृजन की ताक़त,
इन सबों की शक्ति के ऊपर और कविता सृजन की आवाज़ है।

इसी प्रकार के आशावादी स्वर वाली पंक्तियाँ उनकी कविताओं में अन्यत्र भी मिल जाती हैं। यथा –

सृजन की थकन भूल जा देवता
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी !

'अंधा युग' (1954) में महाभारत के अन्तिम दिनों से ले कर श्रीकृष्ण के प्रभास तीर्थ में स्वर्गवास तक की घटनाओं को लिया गया है। यह एक प्रतीक–गर्भित काव्य–रूपक है। युद्ध के कारण प्राचीन मूल्यों का ध्वंस होने और नये मूल्यों की स्थापना की आवश्यकता पर बल देने के कारण ही यह नाटक आधुनिक भाव–बोध का एक सशक्त प्रासंगिक नाटक बन गया है। इसका कई बार सफलतापूर्वक मंचन भी हो चुका है। अश्वत्थामा का आक्रोश, व्यथा–भोग, युयुत्सु की यंत्रणा, गांधारी का भावावेग, धृतराष्ट्र की आत्म–भर्त्सना इत्यादि वर्तमान काल में चतुर्दिक् व्याप्त 'अन्धेर नगरी' को ही गहराते हैं। सरल शब्दावली में 'टोन' के आरोह–अवरोह, लय, हरकत की भाषा, विविध बिम्ब आदि के कारण 'अंधा युग' एक सशक्त नाट्य–कृति कहा जा सकता है।

'कनुप्रिया' (सन् 1959 ई॰) में राधा–कृष्ण शाश्वत नर–नारी प्रेम के प्रतीक–पात्र बना कर प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे यह गाथा पौराणिक के साथ–साथ **आधुनिक** अर्थों से भी समृद्ध हो गई है।

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फैंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले।

गुलकी बन्नो एक कुबड़ी गुलकी की कहानी है, जिसे उसका पति बहुत मारता–पीटता रहता था। उसके पति ने उसकी कमर पर अपनी लात से ज़ोरदार प्रहार किया, जिससे उसको कूबड़ निकल आया था। पति के द्वारा घर से निकाले जाने पर वह गाँव लौट आई। गाँव में माँ–बाप तो पहले ही मर चुके थे। ले–दे कर एक मकान था। उस पर भी उसके रिश्तेदारों की निगाह थी। साग–सब्ज़ी बेच कर वह थोड़ा–बहुत गुज़ारा करती थी। मगर गाँव के बच्चे उसे मज़ाक का पात्र समझ कर जब–तब छेड़ते रहते थे। रिश्ते की बुआ, जिसने उसे दुकान लगाने के लिए चबूतरा दिया था, वह भी उसके घर को छिनवाने में उसके रिश्तेदारों की मदद करने लगी। अंत में गुलकी के पति को बुला कर सौदा पक्का कर दिया। उसके पति को पाँच सौ रुपये दे कर उसका मकान हड़प लिया। गुलकी ने इन सबका बिलकुल विरोध नहीं किया। एक पतिव्रता नारी की भाँति अपने पति के साथ हर हाल में रहना ही अपना धर्म मान कर गाँव वालों से उसने विदा ली।

2.4.3 निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' का सार ः

'ठेले पर हिमालय' स्वर्गीय डॉ॰ धर्मवीर भारती द्वारा रचित एक यात्रापरक निबन्ध–संग्रह है, जिससे लेखक के गहरे प्रकृति–प्रेम का ही परिचय मिलता है। लेखक अपने एक उपन्यासकार मित्र के साथ पान की एक दुकान के आगे खड़ा हुआ था कि इतने में एक व्यक्ति ठेले पर बर्फ़ की सिलें लादे हुए आया। उस बर्फ़ को मुग्ध हो कर देखते हुए लेखक के मित्र बोल उठे –

"यही बर्फ़ तो हिमालय की शोभा है।"

उसी समय लेखक को 'ठेले पर हिमालय' शीर्षक से एक निबन्ध लिखने की बात सूझी। इस निबन्ध में लेखक ने अपनी एक यात्रा का वर्णन किया है।

लेखक के मन में बर्फ़ को बहुत पास से देखने की तीव्र इच्छा थी। इसी इच्छा के वशीभूत वह एक दिन अपनी पत्नी–सहित अल्मोड़ा के कौसानी गाँव की यात्रा के लिए चल पड़ा। लेखक नैनीताल से आगे की यात्रा का वर्णन करता हुआ लिखता है कि वे (लेखक और उसकी पत्नी) नैनीताल से रानीखेत और वहाँ से मझकाली पहुँचे। मझकाली के आगे भयंकर मोड़ों को पार करते हुए वे कोसी पहुँचे। यहाँ तक की यात्रा अत्यन्त कष्टदायी थी। मार्ग भी सूखा और असुन्दर था। हरियाली का कहीं नाम न था। कोसी में लेखक को एक व्यक्ति के साथ शुक्ल जी भी मिले। शुक्ल जी के साथ वाला व्यक्ति चित्रकार था तथा उसका नाम सेन था। वे भी कौसानी ही जा रहे थे। इन मित्रों को पा कर लेखक और उसकी पत्नी की सारी थकान दूर हो गई थी।

ये सभी एक बस में सवार हो गए। कोसी से बस चलते ही रास्ते का दृश्य बदल गया। कोसी नदी 'कल–कल' करती हुई बह रही थी और सड़क के किनारे मख़मली खेत थे। सभी कुछ अत्यन्त आकर्षक था, किन्तु शुक्ल जी ने लेखक के मन में जो सुन्दर तस्वीर बिठाई थी, उसका अभी तक वहाँ कोई निशान न मिला था। कौसानी के अड्डे पर बस रुकी, तो लेखक ने देखा कि वह छोटा–सा बिलकुल उजड़ा–सा एक गाँव है। लेखक तो ठगा–सा रह गया, किन्तु जैसे ही सबके साथ बस से उतरा, तो लेखक जहाँ था, वहीं पत्थर का बुत बन कर रह गया। सामने घाटी में अपार सौंदर्य बिखरा पड़ा था, जो मन को बरबस अपनी ओर खींच रहा था। लेखक को लगा कि उस धरती पर तो जूते उतार कर और पाँव पोंछ कर ही आगे बढ़ना चाहिए। बहुत दूर छोटे–छोटे पहाड़ नज़र आते आ रहे थे। लेखक को बादलों में सफ़ेद, रूपहले और नीले रंगों से मिला हुआ एक छोटा–सा बादल का टुकड़ा दिखाई दिया। लेखक खुशी से चिल्ला उठा –

"बरफ़ ! वह देखो ?"

सभी ने उस ओर देखा, किन्तु अचानक वह ग़ायब हो गया। एक क्षण के उस दृश्य ने सभी की उदासीनता, निराशा और थकावट को हर लिया था। हिमालय पर्वत का कुछ भाग था वह !

इसके बाद वे सभी डाक–बंगले में पहुँचे और चाय पीये बिना ही बरामदे में बैठ गए और एकटक सामने के दृश्य को देखते रहे। एक–एक करके बर्फ़ की अनेक चोटियाँ चमकने लगीं और धीरे–धीरे हिमालय का सारा दृश्य बहुत साफ़ दिखाई देने लगा। उस दृश्य को देख कर जो भावनायें मन में उठीं, उनका वर्णन असम्भव हो गया। बर्फ़ की ठंडक जैसे माथे को छू रही थी। सभी संघर्ष और ताप नष्ट हो रहे थे। सूर्य के छिप जाने पर सब उठ कर मुँह–हाथ धो कर चाय पीने लगे, किन्तु ताप नष्ट हो रहे थे। सूर्य के छिप जाने पर सब उठ कर मुँह–हाथ धो कर चाय पीने लगे, किन्तु सभी ख़ामोश थे, मानो कुछ छिन गया था या उन्हें कुछ ऐसी चीज़ मिल गई थी, जिसे वे भीतर–ही–भीतर सहेज रहे थे। तभी लेखक को लगा कि उस दृश्य के सामने लिखने का काम कितना छोटा था अर्थात् उस आनन्द के सामने लिखने से मिलने वाला आनन्द सर्वथा तुच्छ था। दूसरे दिन सभी जन घाटी मे उतर कर बारह मील चल कर बैजनाथ गए। वहाँ गोमती का अपार सौंदर्य देखा। आज जब भी लेखक को उस यात्रा का स्मरण होता है, तो लेखक का मन पसीज जाता है और फिर वहीं जाने के लिए अकुला उठता है। उसका मन करता है कि एक बार फिर किसी के हाथ हिमालय (पर्वत) को यह सन्देश भेज दे कि –

"नहीं बन्धु...जाऊँगा। मैं फिर लौट कर वहीं जाऊँगा इन्हीं ऊँचाइयों पर तो मेरा आवास है। वहीं मेरा मन रमता है – मैं करूँ तो क्या करूँ ?"

इसी दार्शनिक और भावुकता–भरी मनोवैज्ञानिक टिप्पणी के साथ यह निबन्ध समाप्त होता है।

2.4.4 निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' का उद्देश्य ः

आधुनिक युग में वैज्ञानिक उन्नति के साथ–साथ भौतिकतावादी दृष्टिकोण बल पकड़ता जा रहा है। चारों तरफ़ भाग–दौड़ हो रही है। एक दूसरे से आगे निकल जाने की एक होड़–सी लगी हुई है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में ही सभी सुख, सभी सुविधाओं और सभी आराम पा लेना चाहता है। यह सब कुछ पैसे में ही है, ऐसा आज लोगों का मत बन गया है। केवल धन के लिए आज का प्राणी रात–दिन कठोर परिश्रम कर रहा है। इस परिश्रम से उसे जो सुख मिलता है, वह ओस चाट कर प्यास बुझाने के समान है। यही आज की मृग–मरीचिका है।

इस अंधी भाग–दौड़ ने मनुष्य को प्रकृति से अलग कर दिया है। प्रकृति का वह मूल सौंदर्य, जो मनुष्य की आत्मा और मन में अद्भुत स्फूर्ति और आनन्द का संचार करता है, आज ग़ायब होता जा रहा है।

चारों तरफ़ फूलों से लदा बसन्त लहलहा रहा है, सुगन्धित वायु चल रही है, भँवरे फूलों पर मँड़रा रहे हैं और मस्त कोयलें आम के बौरों को चूम रही हैं, किन्तु मनुष्य को आराम कहाँ है ? वह तो लोभ में पड़ कर काम–भाव से ही मोहित हो रहा है। उसके भीतर गर्मी का ताप है। फूलों से खिले बाग़ की ओर उसका ध्यान नहीं है। आज कितने लोग हैं, जो प्रकृति के सौंदर्य का रसपान करते हैं ? आज तो काग़ज़ के नक़्ली फूलों से अपने ड्राइंग–रूम की शोभा से आँखों से देख कर ही चरम सुख प्राप्त करना चाहते हैं। प्रकृति की गोद में बैठ कर जो साक्षात् आनन्द मिलता है, वह क्या कहीं और मिल सकता है ? भला उस धन, मान और यश का क्या लाभ जो हमें मनचाही शान्ति न दे सके ?

प्रस्तुत निबन्ध का लेखक अपनी पत्नी–सहित कौसानी गाँव में जा कर पहाड़ों पर पड़ी बर्फ़ को देख कर जो अवर्णनीय आनन्द प्राप्त करता है। उसके सामने उसे लिखने से मिलने वाला आनन्द सर्वथा तुच्छ लगता है। अपनी यात्रा के वर्णन द्वारा लेखक ने आधुनिक भौतिकवादी मानव को प्रकृति की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा दी है। अपने निजी अनुभव से उसने यह संकेत दिया है कि प्रकृति–सुख के आगे सभी सुख फीके हैं। सच्चा आनन्द तो वास्तव में निसर्ग–सुन्दर प्रकृति की गोद में ही है। जीवन की भाग–दौड़ से भी आपाधापी में

तो निरी घुटन है, ईर्ष्या है, चिन्ता है और एक प्रकार की अतृप्ति और उससे उत्पन्न विकलता और घोर उदासीनता है, जो हमें हिमालय पर्वत के प्राकृतिक सौंदर्य–दर्शन से वंचित किए रखती है।
पटियाला के उर्दू कवि स्वर्गीय नौबहार 'साबिर' ने इस यन्त्रवादी युग के व्यस्त मानव के अन्तर्गन में निहित इसी प्रकृति–प्रेम को इन शब्दों में व्यक्त किया है –

ज़ात की खोह से निकलें, तो करें सैरे–जहाँ,
दश्त से पिंड छुड़ाएँ, तो समुन्दर देखें !

ग्रंथ 'घुमक्कड़–शास्त्र' के लेखक महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी मानव मात्र को यात्रा, भ्रमण आदि करने का सदुपदेश देते हुए यह उर्दू शे'र सुनाया था –

सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ ?
ज़िन्दगी गर रही तो, ये नौजवानी फिर कहाँ !

2.4.5 सप्रसंग व्याख्याएँ ः

1. "तबियत सुस्त थी और मौसम में उमस थी। दो घण्टे बाद दूसरी लारी आ कर रुकी और जब उसमें से प्रसन्न वदन शुक्ल जी को उतरते देखा तो हम लोगों की जान–में–जान आई। शुक्ल जी जैसा सफ़र का साथी पिछले जन्म के पुण्यों से ही मिलता है। उन्हीं ने हमें कौसानी आने का उत्साह दिलाया था और खुद तो कभी उनके चेहरे पर थकान या सुस्ती दीखी ही नहीं थी, उन्हें देखते ही हमारी भी सारी थकान काफ़ूर हो जाया करती थी।" (पृष्ठ 120)

प्रसंग ः यह गद्यांश डॉ॰ धर्मवीर भारती द्वारा रचित निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' से चुना गया है। यह निबन्ध पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, के बी॰ ए॰ तृतीय वर्ष की कक्षा में निर्धारित पाठ्य–पुस्तक 'निबन्ध–परिवेश' (सं॰ डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी) से है। इसमें सुस्ती और ऋतु की गर्मी के बावजूद कथावक्ता भारती प्रसन्नचित्त शुक्ल नामक मित्र और सहयात्री के आने से अपनी सारी थकन दूर हो जाने की बात करता है।

व्याख्या ः अल्मोड़ा के समीप महाकाली के मार्ग में कथावक्ता अपनी मनःस्थिति को उदासी और सुस्ती से भरी अनुभव करता है। वह अपनी पत्नी के साथ टीन के एक शेड में काठ की बेंच पर बैठ कर समय काट रहा था कि तभी एक लारी से सदैव हँसमुख रहने वाले अपने मित्र शुक्ल जी को उतरते हुए देख कर उन्होंने चैन की साँस ली। वह मन–ही–मन कहता है कि उनका–सा सहयात्री केवल पूर्व जन्मों में किए गए पुण्यों के फलस्वरूप ही मिला करता है। उसी ने उन्हें कौसानी के इस भ्रमण के लिए उसे प्रोत्साहित और प्रेरित किया था। उनके मुख पर कभी भी थकान और सुस्ती नज़र नहीं आती थी। यही कारण है कि उसे सहसा वहाँ आते देख कर उन्हें अपनी सारी थकान दूर होती अनुभव हुई।

गद्य–सौष्ठव ः

1. इन पंक्तियों में निबन्धकार डॉ॰ धर्मवीर भारती ने सरल मुहावरेदार खड़ी बोली में अपने अन्तर्द्वन्द्व को वाणी प्रदान करते हुए अपनी उदास और अवसन्न मनःस्थिति को आशापूर्ण और प्रसन्न होने का कारण बताया है कि उनके प्रसन्नमुख

   मित्र के सहसा आ जाने से उत्साहित और हर्षित हो उठे थे।
2. इन अरबी–फ़ारसी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग हुआ है – तबीसत, मौसम, सफ़र, खुद, चेहरा, काफ़ूर इत्यादि।
3. संस्कृत तत्सम शब्द ये हैं – प्रसन्न वदन, शुक्ल, उत्साह, जन्म, पुण्य, उत्साह इत्यादि।
4. 'उमस' तद्भव शब्द (संस्कृत 'उष्मस्' शब्द) है।

5. 'जान में जान आना', 'काफूर हो जाना' मुहावरों का सटीक प्रयोग हुआ है।

2. "बाईं ओर से शुरू हो कर दाईं ओर गहरे शून्य में धसती जाती हुई हिमशिखरों की उबड़–खाबड़ रहस्यमयी रोमाँचक श्रृंखला। हमारे मन में उस समय क्या भावनाएँ उठ रही थीं, वह अगर पता बता पाता, तो यह खरोंच, यह पीर ही क्यों रह गई होती। सिर्फ़ एक धुंधला–सा संवेदन इसका अवश्य था कि जैसे बरफ की मिल के सामने खड़े होने पर मुँह पर ठण्डी–ठण्डी भाप लगती है, वैसे ही हिमालय की शीतलता माथे को छू रही है और सारे संघर्ष, सारे अन्तर्द्वन्द्व, सारे ताप जैसे नष्ट हो रहे हैं। क्यों पुराने साधकों ने दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों को ताप कहा था और उसे नष्ट करने के लिए वे क्यों हिमालय जाते थे, यह पहली बार मेरी समझ में आ रहा था।" (पृष्ठ 123–124)

शब्दार्थ ः शिखर = चोटी; हिमरेखाएँ = बर्फ़ की गहरी लकीरें; अनावृत = नंगी, प्रकट; शून्य = सुनसान या एकान्त स्थान; रहस्यमयी = भेद या रहस्य से भरी हुई; रोमांचक = शरीर में भयसूचक रोंगटे खड़े कर देने वाली; श्रृंखला = ज़ंजीर, (लक्ष्यार्थ) लम्बी पंक्ति; खरोंच = घसीटने या खुरचने का निशान, (लक्ष्यार्थ) टीस, कसक, खुलिश, चुभन; संवेदन = अनुभव, अनुभूति, प्रतीति, बोध, अॅहसास; सिल (सं॰ शिला) पट्टी, टुकड़ा; अंतर्द्वन्द्व = हृदय के भीतर चलने वाला संघर्ष; शीतलता = ठण्डक; ताप = गर्मी, (लक्ष्यार्थ) दुःख, संकट, कलेश आदि; साधकों = तपस्वियों; दैहिक = शारीरिक (कष्ट) यथा थकन, रोग आदि; दैविक = स्वर्ग–नरक जैसे लोकों से सम्बन्धित कष्ट यथा मोक्ष, मुक्ति, यातना, यंत्रणा, अप्सरा आदि का संग–साथ इत्यादि; भौतिक (कष्ट) = चिन्ता, सांसारिक कार्यों में असफलता, पराजय, प्रवंचना, बुढ़ापा इत्यादि।

प्रसंग ः यह गद्यांश डॉ॰ धर्मवीर भारती द्वारा रचित निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' से चुना गया है। यह निबन्ध पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, के बी॰ ए॰ तृतीय वर्ष की कक्षा में निर्धारित पाठ्य–पुस्तक 'निबन्ध–परिवेश' (सं॰ डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी) से है। इन पंक्तियों में निबन्धकार ने कौसानी के पास बादलों के पर्वतों से नीचे उतरने पर धीरे–धीरे नंगी हो रही उन बर्फ़ीली चोटियों के सौंदर्य को काव्यात्मक भाषा में वाणी प्रदान की है, जिन्हें देख कर मानव के मन में उठने वाले रहस्य और रोमांच की भावना का उल्लेख किया है कि उन चोटियों के बर्फ़ीले स्पर्श के प्रभाव से उसके सभी कष्ट दूर होने लगे थे।

व्याख्या ः निबन्धकार का कथन है कि वे बरामदे में बैठ कर पर्वतों को ढँकने वाले बादलों को धीरे–धीरे नीचे उतरते देख रहे थे, जिससे पर्वतों की चोटियाँ सामने प्रकट होने लगती थीं। उनकी आँखों के सामने बायीं से दायीं ओर वे बर्फ़ीली चोटियाँ दूर तक जाती हुई उनके दिलों में रहस्य और रामांच की भावनाएँ भर रही थीं। काश ! वह उस समय अपने मन में उभर रहे सभी भावों के सम्बन्ध में ठीक से जान पाता, तो उसके मन में टीस का भाव कदापि न रह जाता। आगे भारती जी एक उदाहरण या दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कि बर्फ़ के किसी टुकड़े के सामने होने पर हमारे मुख पर हिमालय की ठंडक हमारे माथे पर ठण्डी भाप छुआ कर हमारे सभी रोग–शोक दूर कर दिया करती है, ठीक तभी उसे याद आया कि हमारे देश के पुराने तपस्वियों ने भला क्यों हमारे सभी शारीरिक, अलौकिक (स्वर्ग–सम्बन्धी) और सांसारिक कष्टों की तुलना तपिशों या गर्मियों से अब तक किए रखी है। इन्हीं कष्टों से छुटकारा पाने के लिए ही तो पुराने तपस्वी और साधु सन्त प्रायः हिमालय पर्वत की यात्रा करने के लिए जाया करते थे। यह बात तब वे स्वयं पहली बार हिमालय पर्वत के गुणों और लाभों के विषय में भली प्रकार हृदयंगम कर चुके थे। इस प्रकार निबन्धकार इस छायावादी–रहस्यवादी गद्यांश में हिमालय पर्वत का गुणगान कर रहा है।

गद्य–सौष्ठव ः

1. खड़ीबोली में इस निबन्ध में लेखक की स्वभावगत सरलता, स्पष्टता और कविहृदयता का पता चलता है।

वह पुराने तपस्वियों के हिमालय जाने के कारण पर भी विचार करते हुए उस पर्वतराज के अथाह गुणों और स्वास्थ्यप्रदता की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

2. इन पंक्तियों में प्रयुक्त संस्कृत तत्सम शब्द ये हैं – अनावृत, शिखर, शून्य, हिम, रहस्यमयी, रोमांचक, श्रृंखला, मन, समय, भावना, संवेदन, ताप, संघर्ष, अंतर्द्वन्द्व, नष्ट, साधक, दैहिक, दैविक, भौतिक, कष्ट, हिमालय।
3. अरबी–फ़ारसी–उर्दू के शब्द ये हैं – शुरू, सिर्फ़।
4. तद्भव शब्द ये हैं – बाईं (सं॰ वाम), भाप (सं॰ वाष्प), माथे (सं॰ मस्तक), पीर (सं॰ पीड़ा), मुँह (सं॰ मुख), नीचे (सं॰ नीचैः), गहरे (सं॰ गम्भीर), पुराने (सं॰ प्राचीन, पुराचीन)
5. देशज शब्द ये हैं – ऊबड़–खाबड़, खरोंच, ठण्डी।
6. कुल मिला कर निबन्धकार द्वारा खड़ीबोली हिन्दी के सहज, स्पष्ट और प्रभावशाली रूप का प्रयोग किया गया है।

2.4.6 कठिन शब्दों के अर्थ ः

मौज़ूँ	=	उपयुक्त।
बाइनाकुलर	=	दूरबीन।
बेसाख़्ता	=	अनायास।
वण्डरस्ट्रक	=	आश्चर्यचकित।
पर्सपेक्टिव	=	कोण।

2.4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न ः

1. डॉ॰ धर्मवीर भारती के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दें।
2. निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' का सार अपने शब्दों में लिखिए।
3. निबन्ध 'ठेले पर हिमालय' का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
4. अग्रलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) अभी कल की बात है, एक पान की दुकान पर मैं अपने एक गुरुजन उपन्यासकार मित्र के साथ खड़ा था कि ठेले पर बर्फ़ की सिलें लादे हुए बर्फ़ वाला आया। ठंडी, चिकनी, चमकती बर्फ़ से भाप उड़ रही थी। मेरे मित्र का जन्म–स्थान अल्मोड़ा है। वे क्षण भर उस बर्फ़ को देखते रहे, उठती हुई भाप में खोए रहे और खोए–खोए–से ही बोले, "यही बर्फ़ तो हिमालय की शोभा है।'"

(ख) वे हँसे भी, पर मुझे लगा कि वह बर्फ़ कहीं उनके मन को खरोंच गई है और ईमान की बात यह है कि जिसने 50 मील दूर से बादलों के बीच नीले आकाश में हिमालय की शिखर–रेखा को चाँद–तारों से बात करते देखा है, चाँदनी में उजली बर्फ़ को धुँध के हल्के नीले जाल में दूधिया समुद्र की तरह मचलते और जगमगाते देखा है, उसके मन पर हिमालय की बर्फ़ एक ऐसा खरोंच छोड़ जाती है, जो हर बार याद आने पर पिरा उठती है। मैं जानता हूँ, क्योंकि वह बर्फ़ मैंने भी देखी है।

पाठ संख्या : 2.5 **लेखक ः डॉ॰ कृष्ण भावुक**

'राघवः करुणो रसः'
(कुबेरनाथ राय)

पाठ की रूपरेखा ः

2.5.0 उद्देश्य
2.5.1 प्रस्तावना
2.5.2 कुबेरनाथ राय का जीवन–परिचय
2.5.3 'राघवः करुणो रसः' शीर्षक निबन्ध का सार
2.5.4 'राघवः करुणो रसः' का उद्देश्य (मूल संवेदना, कथ्य या प्रतिपाद्य)
2.5.5 सप्रसंग व्याख्याएँ
2.5.6 कठिन शब्दों के अर्थ
2.5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.5.0 उद्देश्य ः
2.5.1 प्रस्तावना ः
2.5.2 कुबेरनाथ राय का जीवन–परिचय ः

श्री कुबेरनाथ राय नयी पीढ़ी के प्रतिष्ठित निबन्धकार हैं। ये अपने मौलिक चिन्तन तथा आकर्षक शैली के कारण बहुत थोड़ी अवधि में हिन्दी निबन्धकारों की प्रथम पंक्ति में आ खड़े हुए हैं। इनका जन्म सन् 1935 ई॰ में हुआ था। डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र की तरह ये भी आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की परम्परा के निबन्धकार माने जाते हैं। दोनों में यह अन्तर माना जाता है कि मिश्र जी द्विवेदी जी के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं, जबकि कुबेरनाथ राय उनसे मुक्त हो कर नवीन भंगिमा अपनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इनके निबन्ध आचार्य द्विवेदी की–सी परंपरा और शैली के चरमोत्कर्ष हैं। इनके निबन्ध–संग्रह 'प्रिया नीलकंठी', 'रस–आखेटक', 'गंधमादन', 'विषाद–योग', 'निषाद–बाँसुरी', 'माया–बीज' प्रकाशित हो चुके हैं। इनके निबन्धों में सांस्कृतिक सन्दर्भों से फूटते हुए जीवन के आधुनिक आयामों तथा उनमें से झाँकते हुए जीवन को देखा जा सकता है। संस्कृत के ज्ञान और पाण्डित्य की कुलागत पैतृक परम्परा का पुष्कल प्रकाश इनके प्रत्येक निबन्ध में प्रदीप्त है।

'रस आखेटक' में निबन्धकार ने रस की परिभाषा को नवीन आयाम में व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। 'विषाद–योग' की दिशा पूर्व निबन्ध–संग्रहों से कुछ भिन्न है। कुबेरनाथ राय के शब्दों में – "युग–बोध की दृष्टि से इसमें अधिक प्रामाणिकता है। यदि अन्य संकलनों का आस्वाद श्रीमद्भागवत की जाति का है, तो इस संकलन की स्वानुभूति 'महाभारत' की समगोत्रीय है।" इस निबन्ध–संग्रह में पिछले दशक की तीन प्रतिनिधि चिन्ताधारायें – अस्तित्ववाद, युवा–आक्रोश और समाजवाद रसमयी शैली में अभिव्यक्त हुई हैं। विषय–प्रतिपादन की दृष्टि से इनके अनेक निबन्धों में प्रतापनारायण मिश्र अथवा बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों की–सी भाषा–शैली

परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत निबन्ध का विषय–चयन, निर्वाह और आत्मीय शैली उनकी निबन्ध–कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं।

2.5.3 'राघवः करुणो रसः' शीर्षक निबन्ध का सार ः

श्री कुबेरनाथ राय ने इस निबन्ध में राम–कथा के सन्दर्भ में आधुनिक मानव की मानसिक स्थिति का सुन्दर विश्लेषण किया है। आधुनिक साहित्य में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। आज करुण रस का रूप बदल गया है। आज 'करुणा' का स्थान 'निर्वासन' ने ले लिया है। आज सारा संसार निवार्सन की पीड़ा भोग रहा है। यह पीड़ा विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न रूप में है। अमेरिका 'धन' और 'काम' के अति सुख से पीड़ित है, तो पश्चिमी योरुप रूप के भय तथा दैन्य से पीड़ित है। भारत में भी यह है, भले ही उसका उतना व्यापक स्वरूप अभी नहीं है। भारत में शरणार्थी, पुराने ईमानदार कांग्रेसी, आदर्शवादी व्यक्ति, विस्थापित, बुद्धिजीवी लोग, विश्वविद्यालय के नई पीढ़ी के छात्र, ईमानदार अफ़सर आदि अपने आपको अपने ही देश में एकदम 'निर्वासित' अनुभव कर रहे हैं। उन्हें ऐसा लगता है, मानो उन्हें अपने ही समाज से निकाल दिया गया है। आज के युग में उनके साथ जैसे न्याय नहीं हो रहा है।

आज की नई पीढ़ी का मनुष्य बिना किसी कारण निर्वासित हुए थे, किन्तु श्रीराम और आधुनिक मानव दोनों की प्रतिक्रियाएँ अलग–अलग हैं। श्रीराम के निर्वासन का चरम रूप सीताहरण के बाद देखने को मिलता है। 'किष्किंधा काण्ड' में श्रीराम एक ओर तो बालि–वध की उत्तेजना से पीड़ित हैं और सीता के वस्त्र और आभूषणों को देख कर भविष्य की अनिश्चिता से व्याकुल हैं; तो दूसरी ओर, वर्षा–काल आ जाने के कारण उन्हे कोई भी क़दम न उठा पाने की चिन्ता भी मन–ही–मन साल रही है। श्रीराम के इस आन्तरिक संघर्ष को वाल्मीकि और तुलसीदास ने वर्षा एवं शरद् ऋतुओं के वर्णनों के माध्यम से प्रकट किया है। जहाँ वाल्मीकि ने असहनीय दुःख को चित्रित किया है, वहाँ तुलसी ने राम को अन्त में शान्त, स्थिर और धैर्यवान् दिखाया है। तुलसी के राम में एक ओर तीव्र कामना है, तो दूसरी ओर वैराग्य का स्वर भी है। वाल्मीकि का वर्णन यथार्थ के अधिक निकट है, किन्तु तुलसी का वर्णन भी सहज और स्वाभाविक बन पड़ा है और वह महिमापूर्ण भी है।

आज का नया मानव भी समाज से निर्वासित है, किन्तु वह इस निर्वासन को तुलसी के राम के समान शान्ति और धैर्य के साथ सहन नहीं करता है। इसके अतिरिक्त आज का निर्वासन बाहर से थोपा गया इतना नहीं है, जितना अपने आप ही अपनी इच्छा से ही अपनाया गया है। निर्वासन की इसी स्थिति में राम पूर्णतः अनासक्त और तटस्थ रहते हैं। वे सबसे स्नेह रख कर भी मोह में बँधे नहीं हैं। समय आने पर वे किसी का भी त्याग कर सकते हैं। उनमें सहज प्रेम तो है, किन्तु अनावश्यक आसक्ति नहीं है। इसी कारण उनमें मन में इतना ताप भी नहीं होता है। सीता की अग्नि–परीक्षा के समय वे सीता से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं –

"मैथिली, यह युद्ध मैंने तुम्हारे प्रति आसक्ति या कामना से नहीं किया। ऐसा मुझे 'करना' था, अतः मैंने किया।" रावण के वध का कारण सीता नहीं, उस समय की बिगड़ी हुई दशा थी। यह 'व्यक्तिगत ट्रेजडी' नहीं थी। यदि ऐसा ही होता तो 'रामायण' का कदापि विश्वव्यापी महत्त्व न होता। बाली का वध एक राजनीतिक आवश्यकता थी। मनुष्य होते हुए भी श्रीराम इसी कारण इन्हीं विशेषताओं के कारण ईश्वर माने गए। वे महान् हो गये, 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाए।

इसके विपरीत आज के मानव ने अपने आपको 'स्व' की तंग कोठरी में बन्द कर लिया है। वह अपने आप में ही सिमटा हुआ है। वह देश, राष्ट्र, समाज, परिवार, मानवीय भावों आदि से कट कर जीना चाहता है। उसमें 'अजनबीपन' का भाव सदैव घर किए हुए है। श्रीराम ने 'एकाकीपन' तो अवश्य अनुभव किया, किन्तु 'अजनबीपन' नहीं, इसलिए वे वन में निषाद, कोल–भील, खग–मृग, नर–वानर आदि सभी से प्रेम करते हैं।

रावण का वध करके वे एक महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, किन्तु आज के मानव में इस अनासक्ति–भाव का अपने आप में प्रायः अभाव ही नज़र आता है।

निर्वासन अपने आप में कोई 'शाप' नहीं है, किन्तु जब मनुष्य में 'अजनबीपन' का यह भाव समा जाता है और वह सभी लोगों के प्रति विरक्त हो जाता है, तो यही 'निर्वासन' एक 'शाप' भी बन जाता है। आधुनिक युग का मानव इसी शाप से पीड़ित है। लेखक के मतानुसार ऐसी स्थिति तुच्छ तथा त्याज्य है। वास्तव में आज श्रीराम के अनासक्त निर्वासन–भाव की आवश्यकता है। किसी महान् कार्य के लिए ट्रेजडी आवश्यक है। विश्व का कल्याण करने के लिए हमें कष्ट भोगने की आवश्यकता है। इस पथ पर प्रत्येक मनुष्य को सदैव अकेले ही चलना पड़ता है, स्वयं निर्वासन भोगना ही पड़ता है। यह निवार्सन भी राम के निर्वासन के समान ही होना चाहिए। यही इस निबन्ध का प्रतिपाद्य अर्थात् मुख्य 'कथ्य' या 'उद्देश्य' है।

2.5.4 'राघवः करुणो रसः' का उद्देश्य (मूल संवेदना, कथ्य या प्रतिपाद्य) ः

श्री कुबेरनाथ राय के समीक्ष्य निबन्ध 'राघवः करुणो रसः' में वास्तव में मानव मात्र के निवार्सन–भाव पर दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

1. श्रीराम और निर्वासन का भाव ः

आज का आदमी अपने साधारण जीवन में जगत् के प्रत्येक क्षेत्र से किसी–न–किसी रूप में अकारण ही 'विषमता की स्थिति' भोगता नज़र आता है। 'रामायण' और 'रामचरितमानस' के चरित्र–नायक राम भी अपनी प्राणप्रिया सीता के रावण द्वारा अपहरण किए जाने, अकेलेपन के दुःख को स्वयं भोगने से लगभग ऐसे ही अकारण दण्ड भोगने की विवशता का अनुभव करते हैं। यद्यपि श्रीराम और आधुनिक मानव की परिवेशगत स्थिति एक समान है, तथापि उस स्थिति के प्रति इन दोनों की प्रतिक्रिया विषम या भिन्न कही जा सकती है। वास्तव में 'करुण रस' की ही नवीनतम स्थिति 'आत्म–निर्वासन' का यह भाव है।

श्री वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम सीताहरण से सम्बन्धित दुःख को सहते हुए एक प्रकार के शान्त सौंदर्य–बोध का अनुभव या रसास्वादन करते हैं। इसी प्रकार 'रामचरितमानस' में गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम को इस आत्म–संघर्ष में न केवल एक विजयी योद्धा के समान प्रदर्शित किया है, अपितु उनके शान्त–कान्त, सबल–सरल और स्थिर–मनोहर रूप का भी उन्होंने सफल रेखांकन किया है। यही कारण है कि उनका चरित्र तुलसी के अनुसार एक विश्वव्यापिनी करुणा की भावना से ओत–प्रोत है।

पाठ्य–पुस्तक के संपादक डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी इस निबन्ध के कथ्य का खुलासा करते हुए ये विचार व्यक्त करते हैं –

"इस निबन्ध में आधुनिक मानव के निर्वासन–भाव पर एक विचारोत्तेजक टिप्पणी प्रस्तुत की गई है। लेखक के अनुसार आधुनिक मानव किसी–न–किसी स्तर पर अकारण ही विवशता की स्थिति को भोग रहा है। उसकी तुलना 'रामायण' के नायक राम के निर्वासित होने, पत्नी–हरण का दुःख भोगने और एकाकीपन के अहसास का साक्षात्कार करने के अकारण दंड भोगने की स्थिति से की जा सकती है। दोनों की परिवेशगत स्थिति तो समान है, परन्तु इसके प्रति दोनों की प्रतिक्रिया नितान्त भिन्न है। राम भयंकर आत्म–संधर्ष से गुज़रते हुये या तो ('बाल्मीकि–रामायण' में) असह्य दुःख को शान्त सौंदर्य–बोध में ढाल देते हैं अथवा ('रामचरितमानस'में) आत्म–संघर्ष में विजयी बन कर शान्त, स्थिर और सबल हो जाते हैं। वास्तव में राम का चरित्र व्यक्तिगत सुख–दुःख पर ही केन्द्रित नहीं, उसमें एक व्यापक करुणा का प्रसार है।"

2. राम का धैर्य और गाम्भीर्य ः

कदाचित् यही कारण है कि प्राणप्रिया वैदेही (जानकी, सीता) की विरह–वेदना से रघुकुलमणि श्रीराम भी मानो

किसी विक्षिप्त व्यक्ति की भाँति आचरण और व्यवहार करने लगते हैं। उदाहरणतः वे बन के खग, मृग आदि से अपनी पत्नी सीता का ठौर–ठिकाना पूछते फिरते हैं। उनके भीतर स्थित देवता प्रायः उन्हें लगातार 'निर्वेद' (= वैराग्य) नामक स्थायी भाव की ओर धकेलता रहता है। जीवन और जगत् के प्रति उपरामता या उदासीनता रखने पर भी वे अधिकतर प्रत्येक स्थिति में धीर–गंभीर ही बने रहते हैं, जो सामान्यतः मानवोचित गौरव का ही प्रतिनिधित्व करता है।

3. आधुनिक मानव में अनासक्ति–भाव का अभाव ः

इसके विपरीत आज के साधारण जन में इस मानवीय गरिमा का प्रायः पूर्ण अभाव ही देखने को मिलता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक मानव स्वयमेव आरोपित मनोग्रन्थियों से ग्रस्त है और उस अनासक्त–भाव से पूर्णतः वंचित या शून्य है, जिसने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का पर्याप्त उदात्तीकरण कर दिया है। इसी अनासक्ति के बल पर उन्होंने सीता को पाने के बाद उसे त्यागने में कुछ भी देर नहीं लगायी है।

4. अजनबीपन के दो रूप ः

दूसरी ओर, आज का ग्रन्थिकाल मानव स्वार्थों से दंशित हो कर अपनी केन्द्रीय धुरी से पूरी तरह च्युत या स्खलित हो चुका है। जहाँ राम आत्मनिर्वासन भोगते हुए भी अपरिचय–बोध या अजनबीपन के शिकार नहीं होते हैं, वहाँ आज का आदमी आत्म–निर्वासित होने के साथ–साथ समाज और संसार में पूर्णतः अकेला और बेगाना या अजनबी–सा हो कर ही रह गया है। एक रचनाकार की दृष्टि से देखें, तो इस निपट 'अकेलेपन' को शाप का मूल कारण नहीं माना जा सकता है। इसके विपरीत जब हम सम्पूर्ण जगत्, मानव मात्र, सौंदर्य और यहाँ तक कि स्वयं में अपरिचित या बेगाने हो जाते हैं, तो यही अकेलापन या अजनबीपन मानो किसी 'शाप' (Curse) का समारम्भ करने लगता है। श्रीराम की स्थिति में जो 'अजनबीपन' या आत्मनिर्वासन एक महान् सत्य का साक्ष्य (प्रमाण) प्रस्तुत करता है, ठीक वही आधुनिक मानव के सन्दर्भ में उसकी दैनन्दिन (Daily) ऊब और घुटन की गवाही देने लगता है। दूसरे शब्दों में, करुण रस का ही आधुनिक संस्करण माने जाने वाला निर्वासन (Alienation) का विराट् भाव जहाँ महापुरुषों (यथा श्रीराम) के लिए एक महान् वरदान के रूप में प्रस्तुत होता है, वहाँ आज के मनोरोगी मानव के लिए यही एक भयानक शाप के रूप में बदल जाता है। जो एक व्यक्ति के लिए स्वर्ग के स्वर्णिम द्वार खोल देता है, वही किसी अन्य व्यक्ति को मानो एक कुम्भीपाक नरक में धकेल देता है।

5. आधुनिक मानव का आत्मनिर्वासन और अजनबीपन ः

श्रीराम के विषय में डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी ने ही स्थापित किया है कि – "जहाँ उनका निजी दुःख उन्हें पागल–सा बनाता दिखाई देता है, जिसमें वे खग–मृग से सीता का पता पूछते फिरते हैं, वहीं उनके भीतर का देवता उन्हें 'वैराग्य' और 'अनासक्ति' की ओर अग्रसर करता है। उनका 'धीर, गम्भीर, स्निग्ध, श्यामल' मन मानव की महिमा है। आधुनिक मानव में इस महिमा का प्रतीक है। आधुनिक मानव में इस महिमा से अमृत–स्पर्श का अभाव है, इसीलिए वह अपनी निजी ओढ़ी अनेक ग्रन्थियों में उलझ कर रह गया है। उसमें वह 'अनासक्ति' ही नहीं, जो राम को एकदम ऊपर उठा देती है। मैथिली (सीता) को कठिनाई से प्राप्त कर उसे त्याग देना राम की अनासक्ति का एक उदाहरण है। इसके विपरीत आज का मानव 'स्व' के घेरे में बद्ध है, बल्कि धुरीहीन का एक उदाहरण है। राम निर्वासन भोगते हैं, पर अजनबीपन नहीं ओढ़ते, आज का मानव दोनों को गले लगाता है।..."

6. निर्वासन के श्वेत–श्याम पक्ष ः

लेखक के अनुसार, "जब निर्वासन का अर्थ रचनाकारों का नित्य 'अकेलापन' हो, तो यह शाप की स्थिति नहीं है, पर जब निर्वासन का अर्थ विश्व से, मनुष्य से, सौंदर्य से, अपने आप से अजनबीपन हो तो यह अवश्य ही 'शाप की स्थिति' है।"

इसी लेखकीय वक्तव्य पर डॉ॰ बख़्शी की यह निष्कर्षपरक टिप्पणी है – "कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रथम स्थिति किसी महा सत्य की ओर अग्रसर करती है, परन्तु दूसरी मात्र घुटन का जीवन जीने के लिए छोड़ देती है।"

2.5.5 सप्रसंग व्याख्याएँ ः

1. "ऐसा लगता है कि हम अपनी उत्तेजना को प्रकृति के शान्त सौन्दर्य–बोध में डुबो कर एक शान्त बिन्दु पाने का दुर्निवार प्रयत्न कर रहे हैं। वाल्मीकि ने यह दिखाया है कि यह असह्य दुःख मिट नहीं पाता। इसे भोगने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं, कोई विकल्प नहीं। लीला का जन्म ही भोगने के लिए होता है। उनके शरद्–वर्णन में चल कर यह उत्तेजना और तीव्र हो गयी है, परन्तु तुलसी का बोध अलग है। उनकी उदात्त धीरता को वे शरद्–वर्णन तक ले जाते–जाते इस आत्म–संघर्ष में जयी बना देते हैं और उनका मन शान्त, स्थिर और सबल हो जाता है।"

प्रसंग ः यह गद्यांश श्री कुबेरनाथ राय के विख्यात निबन्ध 'राघवः करुणो रसः' से उद्धृत किया गया है। यह निबन्ध पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के बी॰ ए॰ तृतीय वर्ष की कक्षा में निर्धारित पाठ्य–पुस्तक 'निबन्ध–परिवेश' से उद्धृत है। यह डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी द्वारा सम्पादित पाठ्य–पुस्तक का बारहवाँ और अन्तिम निबन्ध है। इस गद्यांश से पूर्व विद्वान् निबन्धकार ने सीताहरण के पश्चात् श्रीराम के गहन आत्मनिर्वासन, अकेलेपन और असहायता का उल्लेख करते हुए वाल्मीकि और तुलसी के राम में पार्थक्याश्रयी विशेषता भी बताई है। यहाँ वाल्मीकि और तुलसीदास के श्रीराम का स्वरूपगत अन्तर बताया गया है।

व्याख्या ः प्रस्तुत पंक्तियों में निबन्धकार का मत है कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा निरूपित राम अपनी कामोत्तेजना और शान्त सौन्दर्य–बोध दोनों के मध्य घोर अन्तर्द्वन्द्व और आत्मसंघर्ष से ग्रस्त नज़र आते हैं। वे प्रकृति के शान्त सौंदर्य में निजी 'काम' को दमित या निमज्जित करने का प्रयास करते परिलक्षित होते हैं। महर्षि वाल्मीकि के अनुसार उनका कामजन्य सन्ताप दूर नहीं पाता। कदाचित् उनके राम निर्विकप्लता की स्थिति में काम–सन्ताप को भोगने के लिए अभिशप्त और विवश हैं। वे लीला करते हुए भी उसे झेलते हैं और शरद् ऋतु में आकाश के हृदयस्थ भाव, संध्या के कारण ताम्रवर्णी पाण्डुर रंग, पीताभ मुख आदि के व्याज से श्रीराम की कामातुरता झाँक–झाँक जाती है।

दूसरी ओर, तुलसीदास शरद्–वर्णन तक जाते–जाते भी श्रीराम को आत्म–संघर्ष में विजयी प्रदर्शित करते हैं। वे अब शान्तचित्त और स्थिरमना होने के कारण महकर्ष बाल्मीकि के राम–से निर्बल न हो कर सबल बन गये हैं।

गद्य–सौष्ठव ः निबन्धकार के मतानुसार जहाँ वाल्मीकि के श्रीराम आत्मनिर्वासन की स्थिति के भोक्ता और किंकर्त्तव्यविमूढ़–से प्रतीत होते हैं, वहाँ तुलसीदास के श्रीराम इसी अकेलेपन को शान्त, स्थिर और सबल हो कर झेल ले जाते हैं। कथ्य के अनुरूप यहाँ गद्य की समास और व्यास दोनों शैलियों का आश्रय लिया गया है। भाषा यहाँ पूर्ण रूप से भावों और विचारों की अनुगामिनी कही जा सकती है।

2. "पर निर्वासन के भीतर से 'धीर, गम्भीर, स्निग्ध, श्यामल' रूप तुलसी में अधिक सशक्त ढंग से अभिव्यक्त होता है। सहज सौंदर्य–बोध और सतोगुणी मन की यह विजय 'धीर करुण रस'' के प्रतीक राघव

के अधिक उपयुक्त है। यद्यपि दोनों चित्र मानवीय हैं, दोनों सहज हैं, पर एक है मात्र यथार्थ और दूसरा है 'अतिमापक' (या अतिमापरक, Transcendental) यथार्थ।' जीवन में दोनों का अस्तित्व है और दोनों वास्तविक हैं। यह और बात है कि एक की मिसालें ज़्यादा मिलती हैं और दूसरे की कम, पर महिमा का जन्म दूसरे से ही होता है। राम मनुष्य की इसी महिमा के प्रतीक हैं।"

प्रसंग ः यह गद्यांश श्री कुबेरनाथ राय के विख्यात् निबन्ध 'राघवः करुणो रसः' से उद्धृत किया गया है। यह निबन्ध पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के बी॰ ए॰ तृतीय वर्ष की कक्षा में निर्धारित पाठ्य–पुस्तक 'निबन्ध–परिवेश' से उद्धृत है। डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी द्वारा सम्पादित पाठ्य–पुस्तक का बारहवाँ और अन्तिम निबन्ध है। इन पंक्तियों से पूर्व विद्वान् निबन्धकार ने महर्षि वाल्मीकि द्वारा चित्रित सीताहरण से दुखी हो कर श्रीराम की कामातुरता के निरूपण को गोस्वामी तुलसीदास के राम की शान्त और गम्भीर मनोदशा से कहीं अधिक वास्तविक ठहराया है। प्रस्तुत गद्यांश में निबन्धकार ने इन दोनों निरूपणों को मानवीय और सहज मानते हुए भी पहले चित्र को कोरा यथार्थ और दूसरे चित्र को 'अतिमापरक' यथार्थ घोषित किया है।

व्याख्या ः निबन्धकार के अनुसार रामायणकार वाल्मीकि ने सीता से वियुक्त होने पर श्रीराम की कामोत्तेजना को वर्षा ऋतु के वर्णन में व्यक्त किया है। श्रीराम का धैर्य और गाम्भीर्ययुक्त स्निग्ध और श्यामल रूप वाल्मीकि से भी अधिक गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में बसन्त–वर्णन (अरण्यकाण्ड) में गहराई से व्यक्त किया गया है। श्रीराम धीर करुण रस के प्रतीक बन कर उभरते तो हैं, परन्तु उनके मन का सत्त्वगुण एक सहज सौन्दर्यानुभूति से सम्पन्न हो उठा है। यद्यपि वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों के ही श्रीराम–विषयक निरूपण मानवीय सहजता से लैस हैं, तथापि वाल्मीकि का चित्रण कोरे यथार्थ के धरातल पर खड़ा है, जबकि तुलसीदास का निरूपण माया से रहित उच्च भूमि पर स्थापित है। जीवन में 'यथार्थ' के ये दोनों ही रूप देखने को मिल जाते हैं और इन दोनों की वास्तविकता असन्दिग्ध कही जाएगी। इसके अतिरिक्त यद्यपि काम–चित्रण का पहला उदाहरण ही जीवन में नज़र आता है, तथापि महिमा तो शान्त, गंभीर और उदात्तीकृत रूप वाले दूसरे राम के व्यक्तित्व का हिस्सा हो सकती है। श्रीराम वस्तुतः मानव मात्र की काम पर की जाने वाली विजय और गरिमा का ही प्रतिनिधित्व करने वाले कहे जाएँगे।

गद्य–सौष्ठव ः विद्वान् निबन्धकार श्री कुबेरनाथ ने यहाँ श्रीराम 'कथ्य' के अनुरूप संस्कृत तत्सम शब्दावली का सुष्ठु प्रयोग गद्य की समास–शैली में किया है। निबन्धकार ने वाल्मीकि से भी अधिक गोस्वामी तुलसीदास द्वारा निरूपित श्रीराम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को उत्तम घोषित किया है।

3. "वे 'रोमियो' या 'दुष्यन्त' नहीं, सीता को अग्नि–परीक्षा के अवसर पर स्पष्ट बता देते हैं – "मैथिली, यह युद्ध मैंने तुम्हारे प्रति आसक्ति या कामना से नहीं किया। ऐसा मुझे करना था, अतः मैंने किया।" रावण का वध वे व्यक्तिगत रोष के कारण या पत्नी के उद्धार के लिए नहीं करते हैं। पत्नी–उद्धार तो निमित मात्र था। वास्तसिक उद्देश्य था, ऋतु–चक्र की बिगड़ी गति को ठीक करना, इसकी दिशा को ठीक करना। यदि 'रामायण' पत्नी–हरण और उद्धार का काव्य मात्र है, तो इसका विश्व्यापी मूल्य क्या रह गया ? वह व्यक्तिगत ट्रेजडी और व्यक्तिगत समाधान के स्तर की चीज़ नहीं। यदि प्रिया मैथिली के प्रति आसक्ति ही इस युद्ध का कारण रहती, तो इतनी निर्विकारता से सारी व्यक्तिगत व्यथा को दबा कर मैथिली का दुबारा वे त्याग नहीं कर सकते थे। तथ्य तो यह है कि राम ऋतु–चक्र से प्रतिबद्ध थे और यह प्रतिबद्धता जैसे आदेश देती गयी, वैसा वे स्व–निरपेक्ष ढंग से, घोर अनासक्ति के साथ करते गये।"

प्रसंग ः यह गद्यांश श्री कुबेरनाथ राय के विख्यात निबन्ध 'राघवः करुणो रसः' से उद्धृत किया गया है। यह निबन्ध पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के बी॰ ए॰ तृतीय वर्ष की कक्षा में निर्धारित पाठ्य–पुस्तक

'निबन्ध–परिवेश' से उद्धृत है। डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी द्वारा सम्पादित पाठ्य–पुस्तक का बारहवाँ और अन्तिम निबन्ध है। इससे पूर्व वे श्रीराम के चरित्र में 'स्व' (निजी) के प्रति तटस्थता और अनासक्ति के भाव से प्रमाणस्वरूप कुछेक दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। इसी अनासक्ति के कारण वे सीता की प्राप्ति के बाद भी उसे त्यागने में रंच मात्र संकोच नहीं करते हैं। प्रस्तुत गद्यांश में निबन्धकार ने रावण–वध के पीछे श्रीराम के व्यक्तिगत राग–द्वेष की अपेक्षा विकृत हो चुके युगीन ऋतु–चक्र का समायोजन करने का ही लक्ष्य सिद्ध किया है।

व्याख्या ः निबन्धकार के मतानुसार श्रीराम न तो रोमियो जैसे विदेशी प्रेमी हैं और न ही शकुन्तला के पति दुष्यन्त। जहाँ ये दोनों अपनी–अपनी प्रियाओं के प्रति पूर्णतः आसक्त थे, वहाँ श्रीराम ने सीता की अग्नि–परीक्षा के समय उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि उन्होंने उसके प्रति निजी आसक्ति या काम–भाव से प्रेरित हो कर युद्ध द्वारा रावण का संहार नहीं किया था। मुझे तो यह कार्य वैसे भी अवश्य करना था। वास्तव में पत्नी का रावण से उद्धार करना हो तो एक महत् कार्य अर्थात् अनार्य संस्कृति पर आर्य संस्कृति की विजय का तो एक साधन भर था। वे जग–गति की विकृति को दूर करना चाहते थे। यदि पत्नी का उद्धार करना ही 'रामायण' का मुख्य कार्य होता, तो भला इसका विश्वव्यापी महत्त्व कैसे हो सकता था ? अतः यह महाकाव्य किसी व्यक्तिगत त्रासदी की सुखान्त में परिणति नहीं कहा जा सकता है। राम के संस्कृति–उद्धारक महान् उद्देश्य के कारण ही यह काव्य एक महाकाव्य के रूप में विश्वप्रसिद्ध रहा है।

गद्य–सौष्ठव ः निबन्धकार ने इन पंक्तियों में श्रीराम की अनासक्ति और संस्कृति–रक्षा के उद्देश्य की विवेचना अत्यन्त धीर–गंभीर और चिन्तकपरक शैली में की है। उसके तर्कों में अकाट्यता और समन्वयशीलता है। राम असत्य पर सत्य की विजय के प्रतीक हैं।

4. "यह अकेलापन जाने–अनजाने लोगों के बीच 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' वाला अकेलापन है। निर्वासन या अकेलापन है। निर्वासन या अकेलापन मूलतः शाप की स्थिति नहीं। यह शाप की स्थिति तब हो जाती है, जब इसमें अजनबीपन भी आ कर जुड़ जाये। जब निर्वासन का अर्थ रचनाकार का 'नित्य अकेलापन' हो, तो यह शाप की स्थिति नहीं है। पर जब निर्वासन का अर्थ विश्व से, मनुष्य से, सौंदर्य से, अपने आप से 'अजनबीपन' हो, तो यह अवश्य ही शाप की स्थिति है। निवार्सन की ऐसी ही स्थिति को मैं हेय मानता हूँ।"

प्रसंग ः यह गद्यांश बी॰ ए॰ तृतीय वर्ष में निर्धारित और डॉ॰ योगेन्द्र बख़्शी द्वारा सम्पादित पाठ्य–पुस्तक 'निबन्ध–परिवेश' के बारहवें और अन्तिम निबन्ध 'राघवः करुणो रसः' से उद्धृत किया गया है। इस निबन्ध के रचनाकार हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध निबन्धकार श्री कुबेरनाथ राय हैं।

इस गद्यांश से पूर्व निबन्धकार ने श्रीराम के व्यक्तित्व में आत्म–निर्वासन और अकेलापन तो दिखाया है, पर आज के मानव के अजनबीपन या आत्मपरायेपन (Self-alienation) का उनमें एकदम अभाव माना है। प्रस्तुत पंक्तियों में कुबेरनाथ राय का मत है कि अकेलापन या निर्वासन की यह स्थिति कदापि शाप नहीं मानी जा सकती है, जबकि समूचे विश्व और उसके सौंदर्य–बोध से अपने को पूर्णतः काट कर आत्म–निर्वासन भोगने वाला आधुनिक मानव आज अवश्य अजनबी रह जाने के लिए अभिशप्त हो गया है।

व्याख्या ः निबन्ध–लेखक का यह दृढ़ मत है कि श्रीराम का 'अकेलापन' सीता से अलग रहने पर कमल के पत्ते पर पड़े हुए जलविन्दु–सा ही है। अपने आप में यों ऐसा अकेलापन 'शाप' की स्थिति नहीं कहलाएगा। जब इस दशा में अजनबीपन का भाव आ कर मिल जाता है, तब अवश्य इस स्थिति को एक शाप (Curse) बनते देर नहीं लगती। यदि 'निवार्सन' का अर्थ किसी लेखक के घोर अकेलेपन तक ही सीमित रहता है, तब तक इसे अग्राह्य और त्याज्य नहीं माना जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति आज समूचे संसार, मानव

मात्र, सौन्दर्य की हर वस्तु और यहाँ तक कि अपने आप से भी अजनबी हो कर एक संकुचित परिधि या दायरे में क़ैद हो कर आत्मकेन्द्रित रह जाता है, तब अवश्य निबन्धकार ऐसी विगर्हणीय स्थिति को शाप कह कर उसका खण्डन करता है।

गद्य–सौष्ठव ः निबन्धकार का दृढ़ मत है कि जहाँ श्रीराम का निर्वासन–भाव 'रचनात्मक' (Constructive) होने के कारण श्लाघनीय है, वहाँ आधुनिक मानव द्वारा स्वतः आरोपित 'अजनबीपन' की सीमा तक पहुँच जाने वाला 'आत्म–निर्वासन' (Self-alienation) पूर्णतः व्यक्ति–विध्वंसक (Destructive) ही माना जाएगा। राम विश्व के ऋतु–चक्र और महासत्य के श्रेष्ठ संस्थापक थे, जबकि आज का आदमी आत्मपीड़क–स्वरतिक (Narcissistic) प्रवृत्तियों का ही प्रवर्त्तक बन कर एक पतनोन्मुख व्यक्तिवाद का सूत्रधार नहीं बना चला जा रहा है। श्रीराम के करुण रस की इससे हानिकारक कोई और परिणति नहीं हो सकती है, क्योंकि यहाँ श्रीराम का 'देवत्व' आधुनिक मानव के 'दानवत्व' में ढलता देखा जा सकता है।

विद्वान् निबन्धकार ने यहाँ करुण रस, निर्वासन और अजनबीपन से जुड़ी बातों और समस्याओं को पौराणिक महापुरुष श्रीराम के चरित्र के आधार पर अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया है। गद्य की समास–शैली में गुँथ कर संस्कृत तत्सम शब्दावली कथ्य और शिल्प दोनों के गुण से ही चमक उठी है। सच है कि यदि 'पद्य' कवियों की कसौटी है तो निबन्ध 'गद्य' की कसौटी।

2.5.6 कठिन शब्दों के अर्थ ः

बद्धव्रणमिवाम्बरम्	=	आकाश के समान मेरा हृदय घावों से भरा है।
वर्डस्वर्थियन	=	अंग्रेज़ कवि वर्ड्सवर्थ की–सी भावुकतापूर्ण।
न मे तत्र मनस्नापो न मन्युहर्पिंगुव	=	हे श्रेष्ठ वानर (सुग्रीव) ! वहाँ (बाली के मारने पर) न मेरे मन को व्यग्रता हुई और न ही कोई क्रोध हुआ।
पद्मपत्रमिवाम्भसा	=	जैसे कमल–पत्र पानी से निर्लेप (बिना भीगा) रहता है।

2.5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न ः

1. कुबेरनाथ राय के जीवन और कृतित्व पर टिप्पणी कीजिए।
2. 'राघवः करुणो रसः' निबन्ध का सार अपने शब्दों में लिखिए।
3. 'राघवः करुणो रसः' निबन्ध का उद्देश्य अपने शब्दों में लिखिए।
4. अग्रलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) नये साहित्य में करुण रस की नवीनतम स्थिति है : निर्वासन। नये साहित्य में निर्वासन–भाव का स्वतन्त्र विकास इस रूप में हो रहा है कि यह स्थायी भाव जैसा बन गया है। ऐसी हालत में एक स्वतन्त्र 'निर्वासन–रस' की कल्पना कर ली जाए, तो भी कोई हर्ज नहीं। यह मात्र साहित्यिक व्यथा नहीं है।

(ख) विश्व–स्तर पर आज मनुष्य इस निवार्सन–व्यथा को वास्तविक रूप में भोग रहा है। यह तथ्य है। यह सही है कि इसका जो रूप अर्थ–काम के अति सुख से उत्पीड़ित अमरीका में है, वही रूप त्रास और दैन्य से पीड़ित पश्चिमी यूरोप में नहीं है। रूस, चीन या तिब्बत में तो इस निर्वासन की विधा ही बिलकुल अलग क़िस्म की है। पर किसी–न–किसी रूप में मनुष्य (अर्थात् उसका सजीव रूप 'व्यक्ति') सर्वत्र निर्वासन भोग रहा है।

पाठ संख्याः 2.6 **लेखक : सोनू वाला**

काव्य स्वरूप

पाठ की रूपरेखा

2.6.0 उद्देश्य
2.6.1 प्रस्तावना
2.6.2 काव्य का प्रयोजन
2.6.3 काव्य के भेद
2.6.4 सारांश
2.6.5 बोध प्रश्न।

2.6.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको काव्य के प्रयोजन एवं काव्य के भेदों से परिचित करवाया जाएगा। काव्य रचना का प्रयोजन धर्म, यश एवं मानसिक संतुष्टि कहा जाता है क्योंकि अपने विचारों को व्यक्त करने की इच्छा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। साहित्य रचना इसका सर्वोत्तम माध्यम होता है। साहित्य रचना मनुष्य जीवन में मार्गदर्शक का काम करती है और इसमें मानव–मंगल का भाव निहित होता है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

* काव्य रचना का प्रयोजन यशप्राप्ति होता है,
* काव्य रचना मनुष्य के व्यावहारिक ज्ञान को बढ़ाती है,
* इसमें मानव मंगल का भाव निहित होता है, और
* इसमें आनन्द की प्राप्ति होती है।

2.6.1 प्रस्तावना :

साहित्य और जीवन का अभिन्न सम्बन्ध है। अतः जीवन की प्रेरणा या प्रयोजन ही काव्य या साहित्य की प्रेरणा और प्रयोजन है। वस्तुतः मनुष्य किसी भी कार्य में बिना प्रयोजन प्रवृत्त नहीं होता। कहा भी है – 'प्रयोजन बिना मन्दोऽपि न प्रवर्तते' अर्थात् प्रयोजन बिना मंद बुद्धि व्यक्ति भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। अतः प्रश्न उठता है कि काव्य–प्रयोजन क्या है? इस विषय में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में भिन्न–भिन्न विचार व्यक्त किए हैं।

काव्य–प्रयोजन पर विचार करने से पूर्व 'प्रेरणा' और 'प्रयोजन' के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। वस्तुतः 'प्रेरणा' का सम्बन्ध उस व्यक्ति, वस्तु, घटना या दृश्य से है जो कवि को काव्य विशेष की रचना करने में प्रवृत्त करती है और प्रयोजन से अभिप्रायः काव्य–रचना के उद्देश्य अथवा उससे प्राप्त होने वाले लाभ से है। प्रेरणा की स्थिति काव्य–रचना के पूर्व होती है और प्रयोजन काव्य–रचना के बाद की स्थिति है। जैसे आदि–कवि वालमीकि को काव्य रचना की प्रेरणा क्राँच–वध की घटना से मिली। कभी–कभी 'प्रेरणा' और 'प्रयोजन' एक दूसरे में मिल भी जाते हैं।

2.6.2 काव्य का प्रयोजन :

काव्य–प्रयोजन पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है – कवि काव्य की रचना क्यों करता है और पाठक काव्य का अनुशीलन क्यों करता है। विद्वानों ने काव्य–प्रयोजन पर विचार करते समय प्रायः दोनों पक्षों को मिला दिया है। काव्य–प्रयोजन की विवेचना समय–समय पर भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से की है।

क. संस्कृत आचार्यो का मत

संस्कृत के आचार्यों में सर्वप्रथम भरत मुनि ने नाट्य या काव्य–प्रयोजन पर विचार किया है। उनके अनुसार नाट्य (काव्य) धर्म, यश, आयु का साधक, हितकारक बुद्धि वर्द्धक तथा लोकोपदेशक होता है।

आलंकारिक आचार्य भामह के अनुसार –

धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीति च साधुकाव्य निषेवणाम्।।

सत्यकाव्य का अनुशीलन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक पुरुषार्थ चतुष्टय एवं कलाओं में निपुणता, यश–प्राप्ति और प्रीति का कारण है।

रीतिवादी आचार्य वामन ने काव्य–प्रयोजन पर विचार करते हुए लिखा है – ''काव्य सद् दृष्टा द्रष्टार्थ प्रीति कीर्ति हेतुत्वात्'।

अर्थात् सत्काव्य के दो प्रयोजन हैं – एक दृष्ट और दूसरा अदृष्ट। यहाँ दृष्ट का अर्थ है – प्रीति और अदृष्ट का अर्थ है कीर्ति। यहाँ प्रीति दो प्रकार की मान्य है – एक तो काव्य–श्रवण के अनन्तर सहृदय के हृदय में होने वाला सुख और इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार से उत्पन्न होने वाला सुख। कीर्ति को यहाँ स्वर्ग का साधन माना गया है।

ध्वनिवादी आचार्य अनन्दवर्धन ने 'प्रीति' को ही काव्य का प्रयोजन बतलाया है – ''तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्''।

ध्वनिवादी आचार्य आनन्द वर्धन और आचार्य अभिनव गुप्त की 'प्रीति' रीतिवादी आचार्यो की प्रीति से भिन्न है। यह उस विलक्षण आनन्द का नाम है जो सहृदयों के हृदय की अनुभूति का विषय है। रसवादी आचार्यो ने इसी को रसास्वादन या रसानुभूति कहा है।

वक्रोक्तिवादी कुंतक ने भी प्रीति को काव्य–प्रयोजन के रूप में स्वीकार किया है – आचार्य मम्मट ने अपने पूर्व समस्त आचार्यों के मतों एवं विभिन्न वादों का ही समन्वय नहीं किया अपितु काव्य को केवल कला का चमत्कार मानने वालों अथवा केवल मनोविनोद का साधन समझने वालों अथवा अर्थशास्त्र के उपयोगितावाद की कसौटी पर कसने वालों के सामने एक 'समन्वय दृष्टि' प्रस्तुत कर दी और काव्य के निम्नलिखित प्रयोजनों का निरूपण किया –

काव्यं यशसेऽर्थकृते विदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निर्वृित्तये कान्तासम्मित तथोपदेश युजे।।

अर्थात् काव्य का प्रयोजन है यश और धन की प्राप्ति, व्यवहार का ज्ञान, शिवेतर (दुःख) का नाश, तुरन्त परम आनन्द अर्थात् रसास्वाद की प्राप्ति और कान्ता सम्मित उपदेश। मम्मट के परवर्ती हेमचन्द आदि प्रायः सभी आचार्यो ने इस विषय में मम्मट का ही अनुकरण किया है। मम्मट के अनुसार काव्य के छल प्रयोजन हैं –

1. यशसे

काव्य यश के लिए होता है। काव्य निर्माण से कवि की कीर्ति का प्रसार होता है। कविकुल गुरु कालिदास, दण्डी, भरवि, बाग आदि कवियों द्वारा स्व–कीर्ति का प्रसार किया था। काव्य सृजन में प्रच्छन या स्पष्ट रूप से यश का प्रयोजन कहीं अवश्य होता है।

2. अर्थकृते

काव्य धन प्राप्ति के लिए होता है, क्योंकि भौतिक प्रलोभनों में सर्वाधिक धन है – ''सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'' मध्य युग में अर्थ प्राप्ति काव्य का विशेष प्रयोजन था। याबक कवि, केशव, बिहारी ने धन के लिए काव्य रचना की। आधुनिक युग में अर्थ सत्ता इतनी बढ़ गई कि कवि को सरस्वती और लक्ष्मी के बैर का सामना करना पड़ता है।

3. व्यवहारविदे

काव्य व्यवहार ज्ञान के लिए होता है। रामायणादि महाकाव्यों के अनुशीलन से सहृदय को राजा मन्त्री, गुरु आदि तथा माता–पुत्र, पिता–पुत्र, भाई–भाई आदि के उचित आचार का ज्ञान होता है। राजा आदि के व्यवहारों का काव्य द्वारा ज्ञान होना सहज सम्भव है।

4. शिवेतरक्षतये

काव्य शिव से इतर अर्थात् अमंगलम निवारण के लिए होता है। मम्मट के मयूर कवि की ओर संकेत किया है। कुष्ठरोगाक्रान्त मयूर कवि ने सूर्य की स्तुति में शत श्लोकों का काव्य रचा। उससे प्रसन्न होकर सूर्य ने उसके शरीर को निरोग कर दिया।

5. सद्यः पर निर्वृत्तये

काव्य तुरन्त आनन्द की अनुभूति कराने के लिए है। मम्मट के अनुसार अलौकिक आनन्द की अनुभूति ही काव्य का मुख्य प्रयोजन है। यह आनन्द रसास्वाद से निष्पन्न होता है और रसास्वादन रूप है यही सद्यः पर निर्वृत्ति है इस आनन्द को ब्रह्मनन्द–सहोदर कहा गया है। समाधिस्य योगी के समान ही काव्य रसास्वादन का विलक्षण आनन्द है।

6. कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे

काव्य प्रियतमा के समान उपदेश प्रदान करने के लिए है किसी कार्य को करने के लिए प्रायः प्रभु तुल्य मित्र तुल्य और कान्ता तुल्य उपदेशों से बाह्य प्रेरणा मिलती रहती है। प्रभु सम्मित में आज्ञा रहती है। इसमें वेद शास्त्रों का उपदेश आता है। पुराण, इतिहास आदि का उपदेश मित्र तुल्य हैं। तृतीय उपदेश कान्ता तुल्य होता है। काव्य श्रोता को रसमग्न करके जीवनोपयोगी शिक्षा की ओर संकेत कर देता है। बिहारी के दोहे ने राजा जयसिंह पर जादू का असर कर दिया था –

> नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
> अली, कली ही सौ विंध्यौ, आगे कौन हबाल।।

मम्मट सम्मट प्रयोजना के विषय में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं –

1. इन प्रयोजनों में सर्वोपरि कौन है ?
2. किन प्रयोजनों का अधिकारी कवि है और किनका सहृदय ?

प्रथम प्रश्न के उत्तर में मम्मट ने सद्यः पर निर्वृति को प्रमुख माना है – 'सकल प्रयोजन मौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन समुद्भूत् विगलित वेद्यान्तरमान्तदम्'' अर्थात् सब प्रयोजनों में सर्वोपरि है – काव्य–पठन के तुरन्त बाद रसास्वाद से उद्भूत आनन्द, जो तत्काल के लिए अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों में हमें शून्य कर देता है। कुंतक ने भी 'अन्तश्चमत्कार' को प्रधान प्रयोजन घोषित किया है। इसे भामह–सम्मत प्रीति का पर्याय माना जा सकता है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर देने का निर्णय मम्मट ने काव्यशास्त्र के अध्येताओं पर छोड़ दिया है – यथायोगः कवेः सहृदय च। स्पष्टतः इन प्रयोजनों में यश, अर्थ, विशेतरक्षतये का सम्बन्ध कवि से है और व्यवहार ज्ञान तथा कान्ता सम्मित उपदेश का सीधा सम्बन्ध सहृदय के साथ है।

ख. हिन्दी विद्वानों का मत

भक्तिकालीन कवियों में तुलसी ने रामचरितमानस के अन्तर्गत 'स्वान्तः सुखाय को काव्य का प्रयोजन बताया, साथ साथ चतुवर्ग की प्राप्ति को भी।

रीतिकालीन कवि आचार्यो ने संस्कृताचार्यो के लक्षणों का अनुवाद–मात्र कर दिया है और उनमें कोई मौलिक उद्भावना नहीं दिखाई देती।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लोकमंगल की भावना के अनुरूप काव्य को महत्त्व दिया है –

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

आलोचक शुक्ल ने भी काव्य में लोकमंगल पक्ष की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया है – ''कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत् के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण और उनके साथ मनुष्य–हृदय का सामंजस्य–स्थापन है।''

डॉ. नगेन्द्र और आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने आत्मभिव्यक्ति को काव्य प्रयोजन बताया है।

ग. पाश्चात्य विद्वानों का मत

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी काव्य–प्रयोजन पर काफी विचार–विमर्ष हुआ है। प्लेटो से लेकर आई.ए. रिचर्ड्स पर्यन्त अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने काव्य प्रयोजन पर अपने विचार प्रकट किये हैं। सत्यदेव चौधरी ने विषय के आधार पर इन्हें तीन वर्गो में बांटा है –

क. लोकमंगलवी (उपयोगितावादी)
ख. आनन्दवादी
ग. रामन्वयवादी अथवा मध्यम मार्गी

पाश्चात्य विद्वान् अरस्तु ने काव्य के दो प्रयोजन स्वीकार किये हैं – ज्ञानार्जन और आनन्द। ड्राइडन कविता का प्रयोजन मधुर–रीति से शिक्षा देना मानते हैं – पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य को कला के अन्तर्गत माना है। इस दृष्टि से उन्हें चार वर्गों में रखा जा सकता है –

1. **प्रथम वर्ग (यथार्थवादी)** :- इस वर्ग में प्लेटो, टालस्टाय, रसिकन आदि प्रमुख हैं। यह वर्ग काव्य को जीवन और समाज का यथार्थ चित्रण मानता है।
2. **द्वितीय वर्ग (आनन्दवादी)** :- यह वर्ग केवल आनन्द को ही काव्य का उद्देश्य मानता है। जर्मन मनीषी शिलर इस धारणा के पृष्ठ पोषक हैं।
3. **तृतीय वर्ग (नीतिवादी)** :- यह वर्ग नीति और आनन्द दोनों को काव्य का उद्देश्य मानता है। मैथ्यू आर्नल्ड इसी मत को मानते हैं।

चतुर्थ वर्ग :- यह उन आचार्या का वर्ग है जो काव्य और जीवन में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं मानते हैं। इनकी दृष्टि में काव्य–काव्य के लिए है। इसी को 'कला कला के लिए' नाम से अभिहित किया गया है।

कला, कला के लिए :- इस वाद का जन्म, काव्य और कला के अत्यधिक नैतिक, धार्मिक और प्रचारवादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हुआ है। इस वाद के समर्थकों में ब्रेडले, आस्कर, वाइल्ड, स्पिन्नगार्न आदि मुख्य हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस वाद के दो पक्ष हैं – एक पक्ष कवि या कलाकार का और दूसरा पाठक, समाज या श्रोता का। इस सिद्धान्त की पृष्ठभूमि यह है कि कवि या कलाकार कविता या कला कृति की रचना करते समय, कोई निश्चित प्रचारवादी या उपदेशात्मक उद्देश्य को लेकर नहीं बैठता। उसकी प्रतिभा के स्वच्छन्द प्रस्फुटन के लिए प्रयोजन का कोई बन्धन नहीं होना चाहिए अन्यथा उसका पूर्ण विकास नहीं हो सकेगा। कवि का उद्देश्य कला या काव्य की सृष्टि ही है।

वस्तुतः 'कला, कला के लिए' का प्रचार करने वाले यदि कला के नाम पर कुरुचिपूर्ण, अश्लील, दूपित अथवा वीभत्स साहित्य की रचना करने का समर्थन करते हैं तो साहित्य पर बड़ा आघात होगा। काव्य जीवन से निर्लिप्त नहीं हो सकता। इसलिए रिचर्ड्स ने इस सिद्धान्त को न मानकर काव्य के लिए सही अर्थो में नैतिकता तथा लोक मंगल को आवश्यक माना है।

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य आचार्यो द्वारा प्रस्तुत सभी काव्य प्रयोजनों को दो श्रेणियों में विभाक्त किया गया है।

आन्तरिक और बाह्य। आनन्द प्राप्त करना या प्रदान करना आन्तरिक प्रयोजन है। शेष बाह्य श्रेणी में आते हैं। बाह्य प्रयोजन का यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाये तो उनकी परिणति भी आनन्द में होती है क्योंकि यश, धन, कल्याण आदि सभी आनन्द के ही साधन हैं। वस्तुतः काव्य में कलात्मक सौन्दर्य के साथ–साथ लोकमंगल की भावना का मुख्य प्रयोजन 'स्वान्तः सुखाय' या 'लोकमंगल' रहा है।

2.6.3 काव्य के भेद :-

भारतीय आचार्यो ने काव्य का कई आधारों पर विभाजन किया है। बाह्म प्रकार अथवा इन्द्रिय–गम्यता के आधार पर काव्य के दो भेद किये हैं – दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य।

दृश्य काव्य :- दृश्य काव्य उसे कहते हैं जिसका अभिनय किया जा सके। अर्थात् जिसे अभिनीत रूप में देखकर सहृदय उसका आनन्द प्राप्त कर सके। दृश्य काव्य को 'रूपक' भी कहा गया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार – दृश्यं तत्राभिनेयुं 'तद्रूपारो पात्तु रूपकम्'।

अर्थात् दृश्य काव्य वे होते हैं जिनका अभिनय किया जा सके अर्थात् जो नाटक में खेले जा सकें। रूप का आरोप होने के कारण इस दृश्य काव्य को 'रूपक' भी कहते हैं। दृश्य काव्य में जन साधारण भी आनन्द ले सकते हैं। इसे पांचवां वेद कहा गया है, क्योंकि इसमें शूद्र और अल्प बुद्धि के लोग भी भा गले सकते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में रूपकों का बड़ा विस्तार है। नाटक से रूपक व्यापक है और रूपक से व्यापक नाट्य। रूपक और उपरूपक दोनों नाट्य के अन्तर्गत हैं। रूपकों में रस की प्रधानता है और उपरूपकों में भावों, नृत्य एवं नृत्त की मुख्यता रहती है। रूपक के दस प्रकार माने गये हैं –

नाटकं सप्रकरणम् को व्यायोग एवं च।
भाणः समवकारच वीथी प्रहसनिंडिमः।
ईहामृगञ्चविज्ञेयं दशकं नाट्यलक्षणम्।

अर्थात् रूपक के नाटक, प्रकरण व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन डिम, अंक ईहामृग आदि दस भेद हैं। इनमें नाटक प्रमुख है।

दृश्य काव्य का एक अन्य रूप है – उपरूपक। उसके आचार्य विश्वनाथ के अठार भेद किये हैं – नाटिका, त्रेटक, गोष्ठी, सटक, नाट्य रासक, प्रस्थान उल्लास काव्य, प्रेखण, रासक संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, प्रकरणीं, भाणिका, हल्लीश, दुर्मल्लिका आदि। इन रूपकों और उपरूपकों के लक्षण कुछ विशेषताओं को छोड़कर नाटक की तरह होते हैं।

श्रव्य काव्य :- श्रव्य काव्य उसे कहते हैं जिसका अभिनय न हो सके। अर्थात् उसे पढ़कर अथवा सुनकर सहृदय आनन्द प्राप्त कर सके। जैसे कोई भी कविता या काव्य। यद्यपित श्रव्य पढ़े भी जाते थे –

'पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमार्णस्त्रिभिरन्वितम्।'

तथापि उनका प्रचार प्रायः गायन द्वारा ही हुआ करता था। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

'श्रव्यंश्रोतव्यमात्रं तत्पद्य गद्यमयं द्विधा।'

अर्थात् जो केवल सुने जा सकें, जिनका अभिनय न हो सके वे गद्य और पद्य दो प्रकार के श्रव्य काव्य होते

हैं।

1. प्रबन्ध काव्य 2. मुक्तक काव्य

1. प्रबन्ध काव्य :- प्रबन्ध काव्य में पूर्वा पर का तारतम्य रहता है। इसमें छन्द एक दूसरे से कथानक की श्रृंखला में बंधे रहते हैं। उनका क्रम उलटा–पलटा नहीं जा सकता, वे एक–दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। प्रबन्ध काव्य में सामूहिक प्रभाव पर अधिक ध्यान रखा जाता है। इसके भी दो भेद किये है – एक महाकाव्य और दूसरा खण्ड काव्य।

2. मुक्तक काव्य :- मुक्तक काव्य में पूर्वा पर तारत्म्य का अभाव रहता है। मुक्तक में छन्द पारस्परिक बन्ध न से मुक्त होते हैं। वे अपने आप में स्वतः पूर्ण होते हैं। वे क्रम में रखे जा सकते हैं। किन्तु एक छन्द दूसरे से अपेक्षा नहीं करता। दूसरे शब्दों में – जिस काव्य में किसी जीवन–कथा या घटना को अन्विति का बन्धन न हो उसे मुक्तक या स्वतन्त्र काव्य कहते हैं। दर्पणकार ने दो–दो और तीन–तीन छन्दों के भी मुक्तक माने हैं। फिर भी, मुक्तक में एक–एक छन्द की अलग–अलग साज सम्हाल की जाती है। इसके भी दो मुख्य भेद हैं – प्रगीत और पाठ्य। इनमें प्रगीत या गीत काव्य का विशेष महत्त्व है।

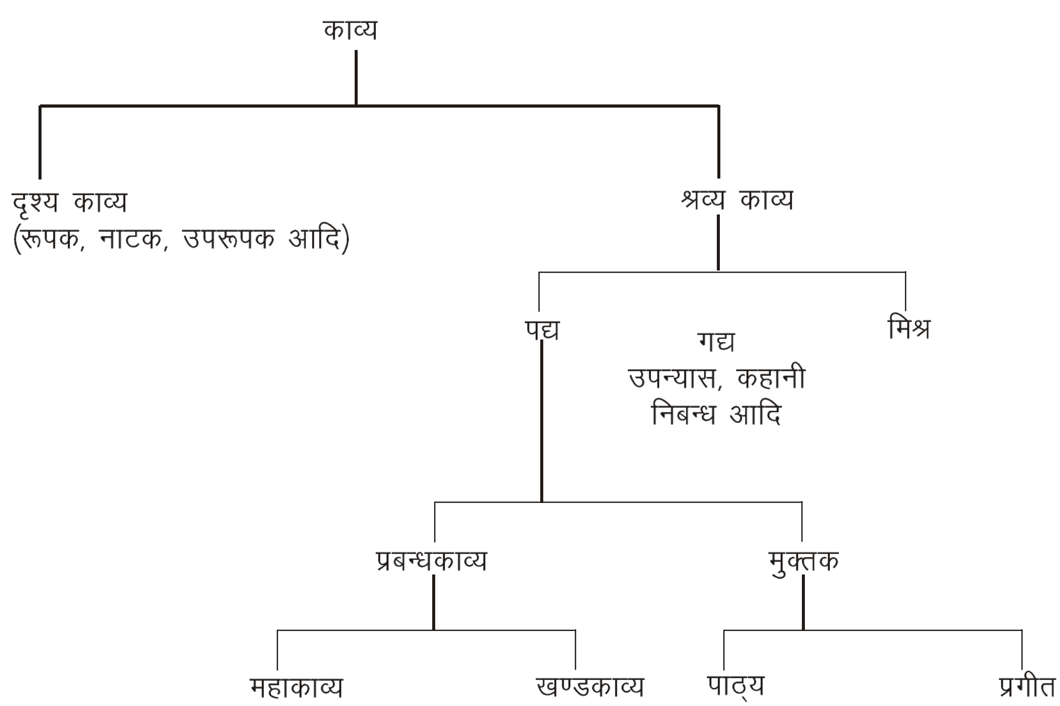

1. रूपक-स्वरूप व भेद

एक वस्तु में किसी अन्य वस्तु के आरोप को रूपक कहते हैं। किन्तु नाट्य शास्त्र में इनका प्रयोग भिन्न ढंग से होता है तथा अभिनेता या नट के ऊपर पात्रों के रूप, अवस्था या उनके व्यक्ति का आरोप किया जाता है। नाटक के विकास में मनुष्य की अनुकरण वृत्ति का बहुत बड़ा योग है। नाटक या रूपक में मानव या मानवेतर प्रकृति का अनुकरण करके उसके द्वारा रसोद्बोध होता है। रूपक में मनुष्य के रूप, चेष्टा और

अन्तःप्रकृति के साथ–साथ उसके मानसिक भावों का भी अनुकरण किया जाता है। अभिनेता मूल पात्रों के रूप चेष्टा एवं मानसिक भावों का अनुकरण करते हुए उन्हें रंगमंच पर प्रदर्शित करता है। अभिनेता के अभिनय कौशल से दर्शकों को अभिनेता में ही रामादि पात्र की प्रतीति होने लगती है। इसीलिए भारतीय नाट्याचार्यो ने अवस्था ने अनुकरण को नाट्य कहा है जबकि रूपक की गणना दृश्यकाव्य में होती है। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार किसी विशेष स्थिति का अनुकरण नाट्य या अभिनय कहलाता है। रूपक, नाटक या दृश्यकाव्य में नाट्य या अभिनय का प्रधान स्थान होता है। अतः दृश्काव्य के भीतर कथावस्तु, चरित्र तथा दृश्यों का इस प्रकार संगठन होता है जिन्हें रंगमंच पर दिखाया जा सके।''

संस्कृत काव्यशास्त्र में दृश्यकाव्य के दो भेद मिलते हैं – रूपक और उपरूपक नाटक को रूपक भी कहा जाता है। दशरूपककार ने रूपक शब्द का प्रयोग नाटक के अर्थ में ही किया है। अतः रूपक के प्रकार नाटक के ही प्रकार हैं। नाटक और रूपक पर्यायवाची अर्थ में प्रयुक्त होते हरे हैं। किन्तु दोनों में सूक्ष्म अन्तर है।

डॉ. कृष्ण लाल हंस के अनुसार नाटक में अवस्थाओं की अनुकृति को प्रधानता दी जाती है जबकि रूपक में असस्थाओं की अनुकृति के साथ–साथ रूप का आरोप भी आवश्यक होता है। इस प्रकार 'रूपक' अवस्थानुकृति का समन्वित रूप है।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार 'रूपक में अनूकृति के साथ–साथ रूप के आरोप पर भी बल दिया गया है। अतएव नाटक के लिए रूपक शब्द का प्रयोग नाट्य की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है।

समभवतः इसीलिए संस्कृत ने नाट्य शास्त्रीय आचार्यो ने भी नाट्य की अपेक्षा रूपक का शब्द–प्रयोग अधिक किया है।

रूपक के भेद

रूपक के दस भेद माने गए हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, व्यायोग, समवकार, डिम, वीथी, अंक और ईहामृग।

1. नाटक

रूपक के भेदों में नाटक ही सबसे अधिक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण है। इसमें अभिनय सम्बन्धी लक्षणों का समावेश हो जाता है। वीर अथवा श्रृंगार रस की प्रधानता होती है अन्य रस गौण होते हैं। हिन्दी में यह संस्कृत के रूपक के स्थान पर प्रयुक्त होता है और दृश्यकाव्य का पर्याय है।

नाटक की कथावस्तु प्रसिद्ध होती है। उसका नायक धीरोदात्त होता है वह उदात्त गुणों से युक्त होता है। इसमें अंकों की संख्या पाँच से दस तक होती है। दस से अधिक अंकों वाले नाटक को महानाटक कहते हैं। नाटक में पांच सन्धियाँ, कार्यावस्था, अर्थ प्रकृतियाँ होती है। इनसे सम्पन्न कथावस्तु का संगठन 'गोपच्छाग्रवत् होता है अर्थात् नाटक के कथानक का विकास संक्षिप्त वृत्त से होता है। बीच में विस्तार और अन्त में कम होता है। इस प्रकार नाटक प्रभावशाली और पूर्ण होता है। जैसे संस्कृत का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक।

2. प्रकरण

प्रकरण में नाटक के समान वस्तु, रस आदि का समावेश होता है। इसकी कथावस्तु उत्पाद्य अथवा कवि–कल्पित होती है। इसका नायक धीर, शान्त होता है जैसे सचिव, पुरोहित, मंत्री आदि। इसमें पाँच से दस तक अंक होते हैं। प्रसंग के अनुसार कुलीना अथवा वेश्या नायिका हो सकती है। जैसे – मृच्छकटिकम्।

3. भाण

यह एकांकी होता है। पात्र भी इसमें एक ही होता है। पात्र अपने तथा दूसरों के धूर्ततापूर्ण कृत्यों का आकाश भाषित रूप में वर्णन करता है। इसमें भारती और कहीं–कहीं कैशिकी वृत्ति का आश्रय लिया जाता है। इसमें पात्र दूसरों के वचनों को स्वयं कहता है। इसमें वह अनेक प्रकार से विविध चेष्टा युक्त अभिनय करता है। उदाहरणार्थ विषस्य विषमौषधम्।

4. प्रहसन

यह हास्यप्रधान एकांकी होता है। इसके तीन भेद हैं – शुद्ध, विकृत और संकर। शुद्ध में सन्यासी, तपस्वी अथवा पुरोहित, विकृत में नपुंसक कंचुकी तथा कामुक और सेकर में धूर्त व्यक्ति नायक के रूप में आते हैं। इसमें परिहास पूर्ण वार्तालाप रहता है। जैसे – अंधेर नगरी।

5. व्यायोग

इसमें कथा वस्तु तथा नायक प्रसिद्ध होते हैं। नायक धीरेद्धत, राजषि अथवा दिव्य पुरुष होता है। पुरुष पात्र अधिक और स्त्री पात्र कम होते हैं। इसमें युद्ध होता है। हास्य, शृंगार तथा शान्त रस की स्थिति नहीं होती। उदाहरण रूप में भासका माध्यम व्यायोग।

6. समवंकार

इसमें कथानक देवताओं और असुरों से सम्बद्ध एवं प्रसिद्ध होता है। नायक बाहर तथा दिव्यादिव्य गुणों वाले पुरुष होते हैं। प्रत्येक को पृथक्–पृथक् फल मिलता है। इसमें वीर रस प्रधान होता है। सभी वृत्तियों का प्रयोग होता है। इसमें तीन अंक होते हैं। इसमें विमर्श सन्धि नहीं होती। प्रथम अंक में दो सन्धियों और अन्य में एक–एक होती हैं। उदाहरण रूप में समुद्रमंथन।

7. डिम

इसकी कथा वस्तु प्रख्यात होती है। इसमें चार अंक होते हैं। सोलह उद्धत नायक होते हैं। प्रधान रौद्ररस होता है शान्त, हास्य तथा शृंगार को छोड़कर अन्य रस गौण रूप में आते हैं। विमर्श को छोड़कर अन्य चार संधियाँ होती हैं। इसमें उल्कापात, सूर्यग्रहण, इन्द्रजाल के दृश्य होते हैं। प्रधान वृत्ति आरभटी है। उदाहरण रूप में त्रिपुरदाह।

8. वीथी

इसकी कथा वस्तु कल्पित होती है। यह एकांकी होता है और इसका नायक माध्यम कोटि का होता है। पात्र एक–दो ही होते हैं। इसमें आकाश भाषित का प्रयोग होता है। इसमें शृंगार रस प्रधान होता है। जैसे – लीला मधुकर।

9. अंक

इसमें वस्तु–विषय प्रख्यात होता है। कवि–कल्पना का भी प्रयोग होता है। यह एकांकी होता है और करुण रस प्रधान। इसमें स्त्रियों का खूब विलाप रहता है। इसमें भारती वृत्ति का प्रयोग होता है। जैसे – शर्मिष्ठा ययाति।

10. ईहा मृग

इसका कथानक मिश्र होता है। इसमें चार अंक तथा मुख, प्रतिमुख एवं निर्वहण सन्धियाँ होती हैं। नायक धीरोद्धत होता है वह अलभ्य नायिका के पाने की इच्छा करता है। प्रति नायक भी उस पर अनुरक्त होता है। इसमें युद्ध की पूर्ण संभावना होती है परन्तु होता नहीं। रूपक के ये भेद नाट्य शास्त्र, दशरूपक, साहित्य दर्पण आदि के आधार पर हैं। इनमें भाण, प्रहसन, व्यायोग, वीथी और अंक ये पाँच एकांकी हैं। रूपक के इन सभी भेदों में नाटक सर्वोत्कृष्ट माना गया है। काव्य भेद में भी नाटक को अधिक रमणीय माना गया है। 'का येषुल्नाटकं रम्यम्' इसी कारण कहा गया है। नाटक शिक्षित, अशिक्षित, नागरिक, ग्रामीण सभी के द्वारा देखा जा सकता है। उसके रसास्वाद के लिए किसी प्रकार की पूर्ववर्ती निपुणता की आवश्यकता नहीं होती।

2.6.4 सारांश :

इस पाठ के अध्ययन के बाद आपने यह जान लिया होगा कि काव्य रचना विभिन्न रूपों में संभव है। इससे लेखक को कीर्ति तो मिलती ही है। साथ ही यह मानसिक संतोष एवं आनन्द प्राप्त करने का भी सफल माध्यम है। यह मनुष्य के विचारों को अभिव्यक्त करने का एक समर्थ माध्यम भी है।

2.6.5 बोध प्रश्न :-

1. काव्य प्रयोजन से क्या भाव है ?
2. काव्य कितने प्रकार का होता है ?
3. दृश्यकाव्य में साहित्य की कौन सी विधाएं आती हैं ?
4. श्रव्य काव्य में कौन सी विधाएं आती है ?
5. प्रबन्धकाव्य तथा मुक्तक काव्य में क्या अन्तर है ?

पाठ संख्याः 2.7 **लेखक : सोनू वाला**

महाकाव्य के लक्षण

पाठ की रूपरेखा

2.7.0 उद्देश्य
2.7.1 प्रस्तावना
2.7.2 महाकाव्य के लक्षण
2.7.3 हिन्दी के महाकाव्य
2.7.4 प्राचीन और नवीन महाकाव्यों में अन्तर
2.7.5 सारांश
2.7.6 शब्दावली
2.7.7 बोध प्रश्न।

2.7.0 उद्देश्य :-

इस पाठ में आपको महाकाव्य के विषय में जानकारी दी जा रही है। इस रचना में किसी महापुरुष की जीवनी का वर्णन जन्म से लेकर मृत्यु तक किया गया हो उसे महाकाव्य कहा जाता है। हिन्दी में महाकाव्य–लेखन की परम्परा वर्षो से चली आ रही है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि,

* महाकाव्य विस्तृत आकार की रचना होती है,
* इसमें किसी महापुरुष की जीवनगाथा का वर्णन आदि से अन्त तक किया जाता है,
* इसकी रचना निश्चित नियमों के अनुसार होती है,
* इसका उद्देश्य महान होता है, और
* हिन्दी में अनेकों महाकाव्यों की एक समृद्ध परम्परा है।

2.7.1 प्रस्तावना :-

महाकाव्य निर्धारित नियमों के अनुसार लिखे जाते है। इसमें लगभग 8 से 10 तक सर्ग होते हैं। महाकाव्य का नायक इतिहास–प्रसिद्ध चरित्र होता है। इसमें विभिन्न रसों का प्रयोग होता है। महाकाव्य का उद्देश्य महान होता है और इसमें मानव मंगल की भावना निहित होती है। इसमें प्रकृति–चित्रण भी मिलता है।

2.7.2 महाकाव्य के लक्षण :-

पाश्चात्य आचार्यो के मतानुसार महाकाव्य को विषय–प्रधान काव्य के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है। भारतीय विद्वानों ने इसके शास्त्रीय लक्षणों को इस प्रकार स्वीकार किया है –

1. महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है।
2. यह आठ सर्गो से बड़ा तथा अनेक वृत्तों (छन्दों) से युक्त होना चाहिए, परन्तु प्रवाह को व्यवस्थित रूप में लाने के लिए एक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिए और अगले सर्ग में आरम्भ होने वाले छन्द की सूचना पूर्व सर्ग के अन्त में देनी चाहिए।
3. महाकाव्य की कथा इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी सज्जनाश्रित हो।

4. उसका नायक धीरोदत्त, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए।
5. श्रृंगार, वीर तथा शान्त रसों में कोई एक रस अंगी रूप में रहना चाहिए।
6. प्रकृति–वर्णन के रूप में नगर, पर्वत, संध्या–प्रातःकाल, संग्राम, यात्रा, समुद्र तथा षट् ऋतुओं का वर्णन हो।

इन लक्षणों से यह ज्ञात होता है कि महाकाव्य में जीवन की समग्र अभिव्यक्ति के अतिरिक्त भावों की बहुलता रहती है। कवींद्र रवींद्र ने कहा है कि ''वर्णनानुगुण से जो काव्य पाठकों को उत्तेजित कर सकता है, करुणाभिभूत, चकित, स्तम्भित, कौतूहली और अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कर सकता है, वह महाकाव्य है और उसका रचयिता महान् कवि।'' फिर वे लिखते हैं कि ''महाकाव्य में एक महच्चरित्र होना चाहिए।'' इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के जो लक्षण बताए है, उनका भारतीय आदर्शो के साथ कोई विशेष अन्तर नहीं दीखता। उन (पाश्चांत्य विद्वानों) के द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों को इस प्रकार रखा जा सकता है–

1. महाकाव्य का कथा–सूत्र नायक से बँधा रहता है।
2. इसका नायक युद्ध प्रिय होना चाहिए और उसके पात्रों में शौर्य–गुण की प्रधानता होनी चाहिए।
3. यह एक विशालकाय प्रकथान–प्रधान काव्य हैं।
4. इसमें केवल एक व्यक्ति का ही चरित्र चित्रण नहीं रहता, संपूर्ण जाति के क्रिया–कलाप का वर्णन रहना चाहिए। व्यक्ति की अपेक्षा इसमें जातीय भावनाओं की प्रधानता होती है।
5. कुछ आलोचक विचार रखते हैं कि महाकाव्य के पात्रों का सम्पर्क देवताओं से रहता है और उनके कार्यो की दिशा निर्धारित करने में देवताओं और भाग्य का हाथ रहता है। लुकन का ऐसा विचार नहीं।
6. महाकाव्य का विषय परम्परा से प्रतिष्ठित और लोकप्रिय होता है। उसमें शैली की शालीनता के लिए केवल एक ही छन्द का प्रयोग रहना चाहिए।

वर्ण्य–विषय की दृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य परम्पराओं में कोई मतभेद प्रतीत नहीं होता केवल उद्देश्य की दृष्टि से कुछ अन्तर परिलक्षित होता है। पाश्चात्य आचार्यो ने महाकाव्य में जातीय भावनाओं के समावेश पर अधिक बल दिया है किन्तु भारतीय महाकाव्यों में जातीय भावनाओं का युद्ध, ऋतु–वर्णन तथा द्वारा ही समावेश हो जाता है। यद्यपि उस (भारतीय) विवेचन में स्पष्टता जातीय भावना के अनुप्रवेश का उल्लेख नहीं हुआ है।

पाश्चात्य महाकाव्य

होमर को पाश्चात्य साहित्य का सर्वप्रथम महाकवि उसी भाँति माना जाता है जैसे महर्षि वाल्मीकि को भारती साहित्य के आदि कवि के नाम से स्मरण किया जाता है। ग्रीक के इस सर्वप्रथम महाकवि ने दो महाकाव्य लिखे जिनके नाम हैं – इलियड और ओड़ेसी। 'इलियड' में ग्रीक के इतिहास में प्रसिद्ध 'ट्राजन–वार' नामक युद्ध का वर्णन हुआ है। यह युद्ध उस समय हुआ जबकि ट्राय के राजकुमार पेरिस द्वारा मेनिलास की रूपवती स्त्री हेलेन को भगाया गया। इस युद्ध में ग्रीक निवासियों को विजय मिली और हेलेन मेनिलास को मिल गई। 'इलियड' की कहानी का यह अंश महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' के अत्यन्त समीप है जबकि इसी प्रकार खलनायक रावण राम की रूपवती एवं पतिव्रता पत्नी सीता को उठाकर ले जाता है और अन्त में रावणत्व पर रामत्व की विजय हो जाती है।

'ओडेसी' में एक ऐसी रोमांचकारी यात्रा का वर्णन है जो ग्रीक–नरेश यूलीसिस के द्वारा की गई। इस महाकाव्य में होमर कवि की कविता पहाड़ झरने की भाँति फूट पड़ी है। भाव उच्च हैं तथा प्रसाद गुण का समावेश है। इस महाकाव्य में मनुष्यत्व में देवत्व की स्थापना की गई है।

'इनियर्ड' महाकाव्य वर्जिल द्वारा रचा गया है। कवि ने इसे होमर के आधार पर ही रचा है। होमर तथा वर्जिल

की भाँति इटली का दाँते नामक कवि भी बड़ा प्रसिद्ध है। 'डिवाइन कामेडी' उसके महाकाव्य का नाम है। इसके तीन खण्ड हैं। प्रथम में नरक की कथा, दूसरे में पापमयी भूमि और तीसरे में स्वर्ग का विशद वर्णन है। अंग्रेज़ी कवि मिल्टन का पैराडाइज लॉस्ट एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें ईश्वर के विरुद्ध शैतान के विद्रोह एवं पतन तथा मनुष्य के उद्धार का चित्रण है।

2.7.3 हिन्दी के महाकाव्य :-

हिन्दी का सर्वप्रथम महाकाव्य चन्दबरदाई रचित 'पृथ्वीराज रासो' माना जाता है। वीरगाथा काल के इस महाकाव्य में महाराज पृथ्वीराज के युद्धों और यात्राओं के साथ प्राकृतिक दृश्यों का भी आकर्षण वर्णन हुआ है। वीर रस के साथ ही इसमें शृंगार और शान्तरस का सम्मिश्रण हुआ है। भक्तिकाल के हमें तीन महाकाव्य मिलते हैं। प्रथम मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत', दूसरा तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' तथा तीसरा केशवदास रचित 'रामचन्द्रिका'। 'पद्मावत्' फारसी की मसनवी शैली पर लिखा गया है और उसमें कवि ने लौकिक कथा के आधार पर अलौकिकता के दर्शन करा दिए हैं। शृंगार और वीर आदि रसों का वर्णन इसमें परमपरागत भारतीय काव्य–पद्धति के अनुसार किया गया है। 'रामचरित–मानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें कवि की कल्पना और प्रतिभा निखर आई है। कथानक के प्रवाह, तारतम्य और मार्मिक स्थलों के कारण यह ग्रन्थ अनूठा बन पड़ा है। यद्यपि इसमें कवि ने सभी रसों का वर्णन किया है किन्तु वीर और शान्त रस इसमें प्रधान हैं। 'रामचन्द्रिका' को यद्यपि महाकाव्य के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है किन्तु उसमें कथा का प्रवाह, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण तथा मार्मिक स्थलों का अभाव दिखाई देता है। अलंकारों की भरमार के कारण इस महाकाव्य की भाषा बोझिल बन गई है और कवि ने केवल पाण्डित्य–प्रदर्शन किया है।

रीतिकाल में कोई महाकाव्य नहीं रचा गया। कारण यह कि ''आश्रयदाता प्रबंध काव्य सुनने का समय और अवकाश नहीं पाते थे। उन्हें विलास से फुर्सत ही नहीं मिलती थी। कवि स्वामी की रुचि देखकर आशुकाव्य की रचना करते थे जिनसे कि मौलिकता का भी ह्रास हुआ।'' आधुनिक युग में महाकाव्यों में प्रमुखतया प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, साकेत संत तथा कृष्णायन आदि प्रसिद्ध हैं।

'प्रियप्रवास' कृष्ण–चरित पर लिखा एक प्रमुख महाकाव्य है। इसमें कृष्ण नायक है तो एक आदर्श महापुरुष है। कवि ने उसे लोकरंजक के रूप में चित्रित करके उसमें लोक–संग्रह की भावना का अनुष्ठान किया है। मानिनी राधा नायिका है जिसके विरह का वर्णन शिष्ट शब्दों में किया गया है। परित्यक्ता राधा–कृष्ण के लोक–रक्षक रूप को अपनाने के लिए वैयक्तिक स्वार्थ को तिलांजलि देती है। 'हरिऔध' जी ने इसमें राधा–कृष्ण के चरित्र की आधुनिक ढंग से व्याख्या करने की कोशिश की है क्योंकि राधा यह नहीं चाहती कि श्रीकृष्ण अपने कर्त्तव्य–पथ से विमुख हो जाएँ। वह कहती है –

''प्यारे जीवें, जगत् हित करें, गेह चाहे न आवें।''

कृष्ण नवयुवकों के नेता, वृद्धों के प्रिय तथा व्रज की गोपियों के आराध्य–देव हैं। महाकाव्य भी भाषा संस्कृत–गर्भित है।

गुप्त जी का 'साकेत' राम–कथा को लेकर भी उर्मिला के आँसुओं के ताने–बाने से बुना हुआ है। उर्मिला का चरित्र इसमें बड़ा ही मार्मिक और सुन्दर बन पड़ा है। यद्यपि यह महाकाव्य 'वाल्मीकय रामायण' तथा 'रामचरितमानस' पर आधारित है फिर भी कई स्थानों पर कवि की नवीन उद्भावनाएँ आनन्द प्रदान करती हैं। इसमे गुप्त जी ने श्रीराम को आदर्श महापुरुष माना है। इनके राम का सन्देश यह है –

''संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।''

उपेक्षिता उर्मिला की भाँति इसमें कैकेयी के प्रति कवि की सहानुभूति निखर आई है। यह महाकाव्य गुप्त जी की कल्पना और अनुभूति का संगमस्थल है। इसमें उद्दीपन रूप में प्रकृति–चित्रण आया है तथा छन्दों का वैविध्य है। भरत के चरित्र को भी कवि न त्यागमय और उज्ज्वल प्रकट किया है। इस महाकाव्य की कथा बड़ी ही रोचक है।

नायिका–प्रधान 'कामायनी' महाकाव्य में प्रसाद जी ने श्रद्धा और इड़ा के प्रतीकों द्वारा मानव–मन को आनन्द लोक की ओर ले जाने के मार्ग का संदेश दिया है। श्रद्धा और बुद्धि के सामंजस्य से ही मानव आनन्द–लोक में विचरण करता है। जहाँ धर्म की भी आवश्यकता नहीं। जल–प्लावन से आरम्भ होकर चिंता, काम, आशा तथा लज्जा आदि सर्गो को जन्म देता हुआ कवि मन के रूप में मानव–मन को श्रद्धा और इड़ा से परिचय कराता हुआ एक ऐसे लोक की ओर ले जाता है जहाँ आनन्द का साम्राज्य है। श्रद्धा ही मनु को आशा, उत्साह और कर्मण्यता का उपदेश देती है। वह तप की अपेक्षा जीवन को महत्त्व देकर कहती है –

''कहा आगुन्तर ने सस्नेह –
    'अरे तुम इतने हुए अधीर।
हार बैठे जीवन का दाव,
    जीतते मर कर जिसको वीर।
तप नहीं केवल जीवन–सत्य
    करुण यह क्षणिक दी अवसाद।''

वह हृदय का द्वार खोलकर दया, माया और ममता के रत्नों को मनु के चरणों पर बिखेर देना चाहती है। कवि ने इसमें प्रकृति के दोनों चित्र – भयंकर और कोमल – अंकित किए हैं। इड़ा और मनु के मतभेद पर प्रकृति भी क्षुब्ध होती है। बुद्धि (इड़ा) का दुरुपयोग विनाश का कारण बन जाता है और मनु को कष्ट तभी उठाना पड़ता है जब वह एक ओर श्रद्धा को छोड़कर दूसरी ओर इड़ा पर अपना पूर्ण अधिकार जतलाना चाहता है। दानों का सामंजस्य ही मानव–मन के लिए आनन्ददायक है और तभी प्रकृत्ति भी कोमल रूप धारण कर लेती है। कवि ने इस महाकाव्य में जीवन और जगत् की समस्याओं को अपने दृष्टिकोण से देखकर उन्हें सुलझाने का प्रयत्न भी किया है।

'साकेत सत' में कवि बलदेव प्रसाद मिश्र ने भरत के चरित्र को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। भरत को ही साकेत (अयोध्या) का संत माना गया है जिसके पावन चरित्र को कवि ने चित्रित किया है। इस महाकाव्य में बौद्धिकता की प्रधानता है।

'कृष्णायन' महाकाव्य पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र द्वारा लिखा गया है। इसमें कृष्ण–चरित्र की झाँकी उपस्थित की गई है। यह अवधी भाषा में लिखा गया है।

आधुनिक काल के महाकाव्यों में उर्मिला (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), कुरुक्षेत्र (दिनकर), दैत्यवंश (हरदयालुसिंह), नूरजहाँ (गुरुभक्त सिंह 'भक्त') तथा आर्यावर्त (मोहनलाल मेहतो 'वियोगी') आदि भी काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं।

2.7.4 प्राचीन और नवीन महाकाव्यों में अन्तर :-

हिन्दी के प्राचीन महाकाव्य संस्कृत के लक्षणों की पद्धति पर ही लिखे गए। उन लक्षणों का पूर्ण रूप इनमें पालन किया गया है। ''समचरितमानस'' में लोक–हित की भावना कार्य कर रही है और उसका नायक नारायण होते हुए भी नर है। दुष्टों का दलन करने के लिए ही राम इस धरती पर अवतरित हुए हैं। उसके प्रति पाठक या श्रोता के हृदय में अनायास ही भक्ति का स्रोत उमड़ पड़ता है। वह उस प्रभु के चरणों पर अपना सिर नवाता है और गद्गद् हो उठता है। ऐसे महाकाव्यों में भक्ति को प्रधानता मिली है। 'पद्भावत'

भी ऐसा ही महाकाव्य है जिसमें साधक प्रेममार्ग को अपनाकर भक्ति के लिए प्रेरित होता है। राम तथा कृष्ण संबंधी महाकाव्यों में यही भावना प्रमुख रूप से पाई जाती है।

आज महाकाव्य का दृष्टिकोण जनरुचि के कारण कुछ बदल सा गया है। लक्षणों का पालन यत्किंचित् शिथिलता के साथ हो रहा है और इसका प्रमुख कारण है – आज की बौद्धिकता। आज का मानव प्रत्येक बात को बुद्धि की कसौटी पर तौलता है। जहाँ बुद्धि में कोई बात ठीक तरह पैठती नहीं वहाँ वह उस वस्तु की स्वीकृति देने में हिचकिचाता है। प्राचीन महाकाव्यों के आधार–श्रद्धावाद–को वह मान्यता नहीं देता। हनुमान ने संजीवनी लाते हुए पर्वत कैसे उठाया तथा श्री कृष्ण ने इन्द्र का मान–मर्दन करने के लिए उँगली पर गोवर्धन कैसे धारण किया? कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर आजकल पाठक बिना कोई कारण पाए संतोष नहीं कर सकता। प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित ऐसी घटनायें आज उसकी बुद्धि को परितुष्ट नहीं कर सकती। आज का कवि इस बात को समझ गया है और उसने राम अथवा कृष्ण संबंधी जो प्रसंग चुने हैं उनमें इसी कारण कुछ हेरफेर किया है। बोद्धिकता–प्रधान युग में ऐसी बातों पर अब कोई सन्देह न करे, इसी का समाधान वह उपस्थित करना चाहता है। गुप्त जी के 'साकेत' में रामाकाव्य की परम्परा पुनर्जीवित हुई है। इसमें राम नारायण होकर नर नहीं अपितु नर होते हुए ही नारायण हैं। आज का मानव यह जानता है कि नर ही अपने शुभ कर्मो से नारायण का रूप धारण कर सकता है। इसी भाव को गुप्त जी ने यों व्यक्त किया है –

''राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र।
पर न हम से भिन्न है, साकेत का गृह–चित्र।।''

गुप्त जी पर आज की बौद्धिकता का गहरा प्रभाव पड़ा है। उनकी श्रद्धा और आस्था भी बुद्धि–संगत दीखती है। गुप्त जी के लिए राम वैभवशाली काव्योपयोगी नायक हैं जो तुलसी के लिए भक्ति और पूजा के आदर्श थे। इसी बात को गुप्त जी ने इन शब्दों में प्रकट किया है –

''भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया।
नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया।''

'साकेत' में कवि ने सीताहरण से लेकर लक्ष्मण की मूर्च्छा तक की सारी कथा हनुमान से ही कहलवाई है। वह जब अर्धरात्रि के समय संजीवनी लेने जाता है तो वह अयोध्या का ऊपर से उड़कर भरत और साकेतवासियों को लक्ष्मण मूर्च्छा का वृत्तान्त सुनाता है। यहीं भरत से हनुमान को संजीवनी प्राप्त होती है और कवि ने उसके द्वारा पर्वत लाए जाने की बात को एक नया रूप दिया है जो समीचीन प्रतीत होता है।

इसी प्रकार कृष्ण चरित्र से संबंध रखने वाले महाकाव्य 'प्रिय–प्रवास' में 'हरिऔध' जी आधुनिक युग की बौद्धिकता से प्रभावित हुए दीखते हैं। कृष्ण चरित्र से संध रखने वाली अलौकिक कथाओं की व्याख्या कवि ने अपने ढंग से की है और उन्हें नई उद्‌भावना के साथ प्रस्तुत किया है। उँगली पर गोवर्धन धारण की कथा कवि ने इस प्रकार सुलझाई है –

''लख अपार प्रसार, गिरीन्द्र में,
व्रजधराधिय के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे,
रख लिया है उँगली पर श्याम ने।।''

'हरिऔध' जी के कृष्ण भी लोकहित की भावना से भरे महापुरुष हैं। कवि ने गुप्त जी की भाँति ही उसे नर से नारायण का रूप देना चाहा है।

कहा जाता है कि आज के महाकाव्यों का दृष्टिकोण कुछ बदल–सा गया है। युग की छाया से वे बच नहीं पा रहे हैं।

2.7.5 सारांश :-

इस पाठ के अध्ययन के बाद स्पष्ट है कि महाकाव्य साहित्य की एक सशक्त विधा है जिसे लेखक एक निश्चित आकार में और निश्चित नियमों के आधार पर अस्तित्व में लाता है। हिन्दी में महाकाव्यों की एक समृद्ध परम्परा मिलती है।

2.7.6 शब्दावली :-

सर्ग	–	अध्याय
सजनाश्रित	–	किसी सज्जन पर आधारित
अपेक्षिता	–	जिसे महत्त्व न दिया जाए

2.7.7 बोध प्रश्न :-

1. महाकाव्य किसे कहते है ?
2. महाकाव्य के लक्षण क्या है ?
3. हिन्दी में महाकाव्य लेखन किस साहित्य की देन है ?
4. हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य कौन से है ?
5. आधुनिक काल के प्रमुख महाकाव्य कौन से है।

पाठ संख्याः 2.8 लेखक : सोनू वाला

शब्द-शक्तियाँ

पाठ की रूपरेखा

2.8.0 उद्देश्य
2.8.1 प्रस्तावना
2.8.2 शब्द–शक्तियां
    2.8.2.1 अभिधा
    2.8.2.2 लक्षणा
    2.8.2.3 व्यंजना
2.8.3 सारांश
2.8.4 शब्दावली
2.8.5 बोध प्रश्न।

2.8.0 उद्देश्य :-

इस पाठ में आपको शब्द–शक्तियों का परिचय दिया जाएगा। जिस साधन या शक्ति के द्वारा शब्द के अर्थ को बोध होता है उसे शब्द–शक्ति कहते हैं। भाषा में विभिन्न प्रकार के शब्द होते हैं जिनके अर्थ का बोध भी विभिन्न रूपों में होता है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि,

* भाषा में मुख्य रूप से तीन प्रकार के शब्द होते है,
* शब्दों के अर्थ का बोध कराने वाली शब्दशक्तियाँ भी तीन प्रकार की होती है,
* शब्द–शक्तियां भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि करती है, और
* शब्द शक्तियां भाषा में शब्दों के अर्थ को विभिन्न रूपों में व्यक्त करती है।

2.8.1 प्रस्तावना :-

भाषा में शब्द–शक्तियां विशेष महत्त्व रखती है। भाषा में मुख्य रूप से तीन प्रकार के शब्द मिलते हैं – वाचक, लक्षक और व्यंजक। शब्दों के अर्थ का आभास कराने वाली शक्तियां अभिधा, लक्षणों एवं व्यंजना कहलाती है। इनके कार्य एवं प्रयोग का विस्तृत विवेचन इस पाठ का लक्ष्य है।

2.8.2 शब्द-शक्तियां :-

जिस साधन या शक्ति के द्वारा शब्द के अर्थ का बोध होता है, उसे शब्द–शक्ति कहते हैं। कुछ विद्वानों ने 'शक्ति' के स्थान पर 'व्यापार' शब्द का भी प्रयोग किया है। वस्तुतः शब्द कारण होता हैं और वह व्यापार जिसके आधार पर अर्थ की सिद्धि होती है उसे शब्द–शक्ति कहते हैं।

भाषा में तीन प्रकार के शब्द होते हैं – वाचक, लक्षक और व्यंजक। इन्हीं के आधार पर अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं – वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ इस प्रकार तीन प्रकार के शब्दों से तीन प्रकार के अर्थो को सम्बद्ध करने के लिए तीन प्रकार की शब्द–शक्तियाँ मानी गई हैं – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

शब्द	**अर्थ**	**शब्द - शक्ति**
वाचक	वाच्यार्थ	अभिधा
लक्षक	लक्ष्यार्थ	लक्षणा
व्यंजक	व्यंग्यार्थ	व्यंजना

इस प्रकार तीन प्रकार के शब्द–अर्थ की वाचक तीन शब्द शक्तियों का विवेचन निम्नलिखित है–

2.8.2.1 अभिधा

जिस व्यापार के द्वारा शब्द के मुख्य अर्थ अथवा कोशगत अर्थ का बोध हो, उसे अमिधा कहा जाता है। आचार्यो ने इसे 'प्रथमा' या अग्रिम का भी नाम दिया है। आचार्य मम्मट के अनुसार –

'स मुख्यार्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोस्याभिधोच्यते'

अर्थात् अव्यवधानपूर्वक संकेतित मुख्य अर्थ को बताने वाला शब्द का मुख्य व्यापार अभिधा कहलाता है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने अभिधा को 'शब्द के मुख्य अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति कहा है। पं. रामदहिन मिश्र ने 'साक्षात् सांकेतिक अर्थ का बोधक व्यापार' कहकर अभिधा की व्याख्या की है। किन्तु डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त की निम्नलिखित व्याख्या युक्ति–संगत प्रतीत होती है – ''भाषा की जिस शक्ति से शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का बोध होता है वह अभिधा शकित है।''

नैयायिकों ने अभिधा मूलक की उत्पत्ति संकेत से न मानकर ईश्वरेच्छा से स्वीकार किया है। अभिधा के भेद अभिधा के द्वारा जिन शब्दों से अर्थ–बोध होता है, उन्हें वाचक कहते हैं। वाचक शब्द तीन प्रकार के होते हैं–

1. **रूढ़ि** - हिनकी व्युत्पत्ति नहीं होती और जो समुदाय शक्ति के बोधक होते हैं जैसे – पेड़, घोड़ा, आँख, कान, नाक आदि।

2. **यौगिक** - दो अवयवों के योग से बने शब्द यौगिक कहलाते हैं। इन अवयवों के आधार पर ही अर्थ का बोध हो पाता है। जेसेस 'भूपति' – भू (पृथ्वी) तथा पति (मालिक) के योग से बना है। दोनों अवयवों के आधार पर भूपति का यौगिक अर्थ है – 'राजा'।

3. **योग रूढ़ि** - इसमें रूढ़ि और यौगिक दोनों का मिश्रण होता है। उदाहरणर्थ – 'पंकज' शब्द को लिया जा सकता है। इसका अर्थ है 'कमल' किन्तु इस अर्थ की सिद्धि 'पंक' (कीचड़) औज 'ज' (जन्म लेने वाला) के मिश्रण से ही हो पाती है।

अभिधा की महत्ता

भट्टलोल्लट और आचार्य कुंतक अभिधावादी आचार्य हैं। आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को 'विचित्रा' अभिधा कहा है। उनकी दृष्टि में विचित्र अभिधा से उत्तम कोई अन्य व्यापार नहीं है।

मुकुल भट्ट नामक विद्वान् ने अपने ग्रन्थ 'अभिधा वृत्ति मातृका' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अभिधा के अतिरिक्त कोई और शक्ति है ही नहीं।

कविवर देव ने अभिधा को ही मुख्यता दी है और लक्षण तथा व्यंजना को उससे हीन माना है। उनके शब्द रसायन का कथन प्रसिद्ध है –

'अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना लीन।
उधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन।।''

वस्तुतः उपर्युक्त विचार तभी सार्थक हो सकते हैं जबकि लक्षण और व्यंजना अभिधा पर आश्रित रहती हो। लक्षणा में भी अभिधार्थ से सम्बन्ध रहता है और व्यंजना भी अभिधा के आधार पर चलती है।

कभी–कभी शुद्ध अभिधा के प्रयोग बड़े भाव–व्यंजक होते हैं। यथा 'गोदान' में प्रेमचन्द ने घी के अभाव के लिए लिखा है – ''आँख में आँजने भर को घी नहीं था' इसके अर्थ में बहुत ही भाव व्यंजकता है। कभी–कभी लक्षणा

और अभिधा मिलकर सोने में सुहागे का काम करती है। जैसे बिहारी के दोहे में –

''मेरी भव–बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै श्याम हरित दुति होई।।''

इसी प्रकार सूरदास की स्वभावोक्तियों में प्रायः अभिधा का ही चमत्कार है। जैसे 'मैया मैं नहिं माखन खयो' आदि।

2.8.2.2 लक्षणा

मुख्यार्थ के बाधित होने पर जब किसी अन्य अर्थ की सिद्धि होती है तो उसे लक्ष्यार्थ कहा जाता है। जिस व्यापार के आधार पर लक्ष्यार्थ तक पहुंचा जाता है, उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं। लक्ष्यार्थ किसी–न–किसी रूप में मुख्यार्थ से जुड़ा रहता है। आचार्य मम्मट ने लक्षणा की व्याख्या करते हुए कहा है –

मुयार्थ बाधे तद्योगे रूढ़ि तोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सालक्षणारोपिता क्रिया।

अर्थात् जहाँ अभिधा द्वारा अर्थ की सिद्ध में बाधा होने पर किसी रूढ़ि या प्रयोजन के आश्रित मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ (आरोपित अर्थ) ग्रहण कर अवरोध दूर किया जाता है, वहाँ लक्षणा का व्यापार समझना चाहिए।

लक्षणा व्यापार में तन तथ्य प्रमुख हैं –

1. मुख्यार्थ में बाधा
2. मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ
3. इस अर्थ को रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर लगाना,

जैसे – ''नौकर गधा है'' इस उदाहरण में – नौकर गधा कैसे हो सकता है – यह मुख्यार्थ में बाधा है। नौकर गधे के समान मूर्ख है – यह मुख्यार्थ से सम्बन्धित अर्थ है। यह अर्थ विशिष्ट प्रयोजन के आधार पर लगाया गया है।

लक्षणा के भेद

रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं – रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा।

क. रूढ़ि लक्षणा - जहाँ भाषा के प्रचलित प्रयोग के आधार पर मुख्यार्थ को छोड़कर लक्ष्यार्थ को ग्रहण किया जाता है वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है जैसे – 'पंजाब बहादुर है' – में पंजाब के मुख्यार्थ अर्थात् प्रदेश विशेष को छोड़कर उसके रूढ़ या लोक प्रचलित अर्थ के आधार पर नवीन अर्थ अर्थात् 'पंजाबवासी' या 'पंजाबी' ग्रहण किया जाता है। अतः यह रूढ़ि लक्षण है।

ख. प्रयोजनवती लक्षणा - जहाँ किसी विशेष अभिप्रायः या प्रयोजन से लाक्षणिक शब्द का प्रयोग हो वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है, जैसे –

'शिवाजी शेर थे' यहाँ शेर के मुख्यार्थ अर्थात् पशु–विशेष को छोड़कर उसके नवीन अर्थ निर्भयता और निडरता को लिया गया है जो किसी प्रयोजन विशेष के कारण है।

अन्य भेद

1. गौणी लक्षणा - जहाँ सादृश्य गुण के आधार पर अर्थ लगाया जाता है। जैसे – 'चन्द्र मुख' में लक्षण सादृश्य के आधार पर गौणी लक्षणा है।

2. शुद्ध लक्षणा - जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर सादृश्य सम्बन्ध के अतिरिक्त किसी अन्य सम्बन्ध द्वारा लक्ष्यार्थ का ज्ञान हो। जैसे – 'गंगायाम् द्योषः' में सामीप्य सम्बन्ध है।

3. उत्पादन लक्षणा - जहाँ वाक्य के अर्थ की सिद्धि के लिए मुख्य अर्थ के साथ साथ लक्ष्यार्थ का आक्षेप किया जाए। उपादान का अर्थ है सामग्री लेना अर्थात् मुख्यार्थ को लक्ष्यार्थ की सामग्री के रूप में ग्रहण किया जाये। जैसे – सीता उर्मिला से कहती है – 'मिला न वन ही न भवन ही तुझको'। यहाँ 'भवन' से अभिप्रायः भवन के सभी सुखों और 'वन' से लक्ष्मण के साथ जाने का उपादान किया गया है। 'भवन' और 'वन' का अपना अर्थ विद्यमान है। इसे 'अजहत् स्वार्थी लक्षणा' भी कहते हैं।

4. लक्षण लक्षणा - जहाँ मुख्यार्थ लक्ष्यार्थ की सिद्धि के लिए अपने आपको समर्पित कर दे अथवा स्व अर्थ को छोड़ दे। अर्थात् लक्ष्यार्थ की प्रधानता हो और मुख्यार्थ का उपयोग न हो। इसे जहत् स्वार्थी लक्षणा भी कहते हैं। जैसे – गंगायां घोषः, 'सूर्य माथे पर आ गया है' आदि।

5. साध्यवसाना लक्षणा - जहाँ आरोप के विषय का शब्द द्वारा निर्देश न होकर केवल मूल वस्तु का उल्लेख हो। जैसे 'साकेत' में गुप्त जी लिखते हैं –

''नैश गगन के गात्र में पड़े पफपफोले हाय,

यहाँ 'तारे' उपमेय का अव्यवसान (लोप) है, उसकी सूचना केवल आरोप्यमान 'पफपफोले' से दी गई है।

6. सरोपा लक्षणा - जहाँ विषयी का शब्द द्वारा अलग–अलग कथन किया जाए। जैसे ''राम कथा सुन्दर करतारी संशय विहग उड़ावन हारी'' यहाँ 'राम कथा' पर 'करतार' का और 'संशय' पर 'विहग' का आरोप है। 'लक्षणा शक्ति' की रूपरेखा इस प्रकार है –

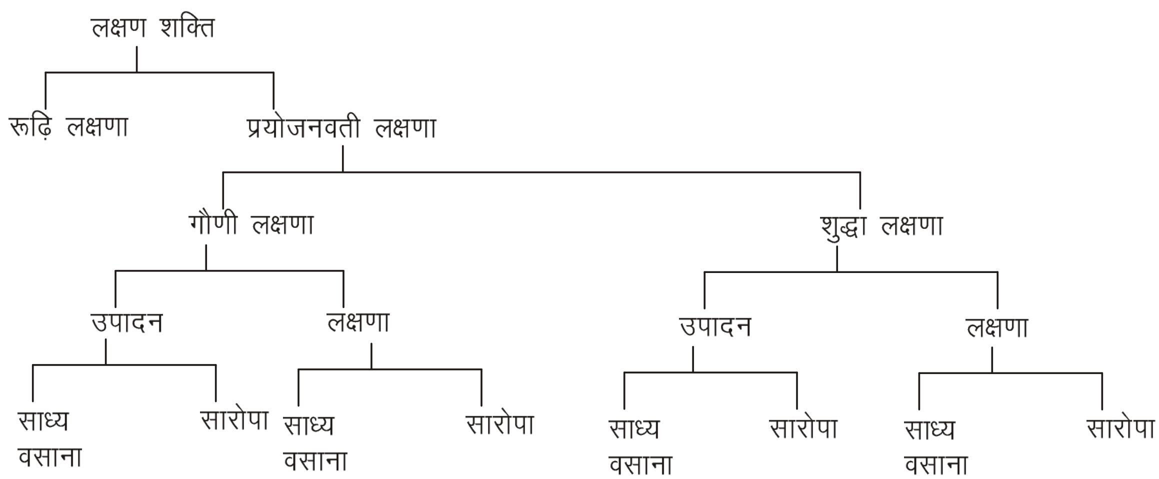

कुछ आचार्यो ने लक्षणा को अत्यधिक महत्ता प्रदान की है। उन्होंने लक्षणा को काव्यात्कृष्टता का मूलाधार माना है। रीतिकानील कवि आचार्य घनानन्द ने शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग में विशेष नैपुण्य प्रदर्शित किया है। आचार्य शुक्ल ने घनानन्द के लाक्षणिक प्रयोगों की प्रशंसा भी खूब की है। उनका कथन है – ''अपनी भावनाओं के अनूठे रूप–रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षणा और व्यंजना बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख उन्हीं को थी।''

इसके अतिरिक्त छायावादी युग में प्रसाद और पंत की रचनाएँ लक्षणा के उदाहरण रूप में विशेष उल्लेखनीय हैं।

लक्षणा की छटा आकर्षण का आधार बनती हैं। रूपक इसी प्रकार का अलंकार है।

2.8.2.3 व्यंजना

जहाँ अभिधा और लक्षणा अपना अर्थ देने के बाद विराम लेती है और अन्य शक्ति के बल पर गूढ़ अर्थ की व्यंजना होती है, उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार – ''अपना–अपना अर्थ बोध, कराकर अभिधा आदि वृत्तियों के शान्त हो जाने पर जिससे अन्य अर्थ का बोध होता है वह शब्द में तथा अर्थादि में रहने वाली वृत्ति व्यंजना कहलाती है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार – ''व्यंजना शक्ति ऐसे अर्थ को बतलाती है, जो अभिधा, लक्षणा या तात्पर्य वृत्ति द्वारा उपलब्ध नहीं होता।''

इस प्रकार जहाँ अभिधा भिन्न–भिन्न शब्दों में, लक्षणा अकेले शब्द में सक्रिय न होकर शब्द समूहों में या वाक्यों एवं वाक्यांशों में ही उद्दीप्त होती है वहाँ व्यंजना प्रसंग या प्रकरणों में सक्रिय होती है। अतः कहा जा सकता है – ''व्यंजना भाषा की वह शक्ति है जिसके कारण किसी प्रसंग या प्रकरण विशेष में एक साथ अनेक स्वतन्त्र अर्थो की अभिव्यक्ति होती है। जैसे – 'संध्या हो गई' यह घटना विशेष है व अभिधा इसकी सूचना देकर काम कर चुकी, इसका विशेष अर्थ हुआ – 'दीपक जला दिया जाए' या पाठ समाप्त करो। भिन्न–भिन्न पुरुषों के लिए भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में इसका विशेष अर्थ होगा।

व्यंजना के भेद

व्यंजना के दो भेद हैं – शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना।

1. शाब्दी व्यंजना - इसमें प्रसंग या प्रकरण के साथ शब्दों की मुख्यता रहती है। इसका दूसरी भाषा में अनुवाद नहीं हो सकता। वस्तुतः शाब्दी व्यंजना व्यंग्यार्थ बोध का साधन शब्द होते हैं।

उदाहरणार्थ -

प्रकरण के अनुसार - भोजनालय में 'सैन्धव' का अर्थ 'नमक' होगा 'घोड़ा' नहीं।

सामर्थ्य के अनुसार - 'काल, सर्प एवं हाथी दोनों को कहते हैं, किन्तु 'सर्प' पेड़ नहीं तोड़ सकता।

देश के अनुसार - 'जीवन' का अर्थ जल एवं जिन्दगी दोनों हैं। किन्तु 'मरु में जीवन दूर है' कहने में जीवन का अर्थ जल ही होगा।

2. आर्थी व्यंजना

जहाँ वक्ता की चेष्टा विशेष के कारण व्यंग्यार्थ का बोध हो वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्य–प्रकाश' में शब्द का अर्थ लगाने के कई आधार बताए हैं।

वक्ता की विशेषता के कारण, जिसे बात कही जाए उसकी विशेषता के कारण, कण्ठ–ध्वनि की विशेषता के कारण, वाक्यार्थ की विशेषता के कारण, दूसरे व्यक्ति के सान्ध्यि की विशेषता के कारण, प्रसंग की विशेषता के कारण, देश की विशेषता के कारण, काल की विशेषता के कारण चेष्टा की विशेषता के कारण।

जो अर्थ प्रतिभाशाली लोगों में प्रस्फुटित होता है, वह व्यंग्यार्थ है।

उदहरणार्थ – वक्तृ वैशिष्ट्य के अनुसार –

'सागर कूल मीन तरपफत है, हुलसि होत जल पीन'

इस वाक्य को सूर की गोपियों द्वारा कहा गया है। यहाँ वह व्यंजना है कि कृष्ण के बहुत दूर न होते हुए भी वे उनके प्रेम से वंचित हैं।

व्यंजना की महत्ता

काव्य में व्यंजना की महत्ता वहुविध है। इसका पहला आधार यह है कि काव्य की आत्मा रस है। रस का वही

रूप सर्वोतम है जो व्यंजना की देन है। रस प्रत्येक स्थिति में व्यंग्य होता है। इसकी महत्ता का दूसरा आधार है। जैसा आनन्द वर्धन ने कहा है कि व्यंजना–प्रधान अर्थात् ध्वनि काव्य सर्वोतम होता है। इस प्रकार व्यंजना या ध्वनि ही काव्योत्कृष्टता का मूलाधार है।

2.8.3 सारांश :-

इस पाठ के अध्ययन से स्पष्ट है कि भाषा में शब्दों के अर्थ का बोध तीन प्रमुख शब्द शक्तियों द्वारा संभव होता है। इन शक्तियों के अंगों का विस्तृत विवेचन इस पाठ में किया गया है।

2.8.4 शब्दावली :-

आचार्य	–	विद्वान
मुख्यार्थ	–	मुख्य अर्थ
प्रयोजन	–	लक्ष्य
प्रकरण	–	प्रसंग
वक्ता	–	बोलने वाला

2.8.5 बोध प्रश्न :-

1. शब्द शक्तियां कितने प्रकार की है ?
2. अभिधा शब्द शक्ति से क्या भाव है ?
3. लक्षणा शब्द शक्ति किसे कहते हैं ?
4. व्यंजना शब्द शक्ति से क्या भाव है ?
5. भाषा में शब्द–शक्तियों का क्या महत्त्व है ?

पाठ संख्याः 2.9 **लेखक : सोनू वाला**

छन्द

पाठ की रूपरेखा

2.9.0 उद्देश्य
2.9.1 प्रस्तावना
2.9.2 छंद परिचय
2.9.3 छंद का महत्त्व
2.9.4 छंद के तत्त्व
2.9.5 छंद के प्रकार
2.9.6 दस छंदों का परिचय
2.9.7 सारांश

2.9.0 उद्देश्य :-

इस पाठ में आपको छंद का परिचय दिया जाएगा। छंद का प्रयोग कविता को क्रम, गति और लय में बांधने के लिए किया जाता है। इसमें मात्राओं गति और यति आदि का विशेष महत्त्व होता है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान पाएगे कि,

* छन्द निश्चित मात्राओं के अनुसार लिखे जाते हैं,
* छन्दों के प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य की वृद्धि होती है,
* छन्द कई प्रकार के होते हैं, और
* काव्य में छंदों का बहुत महत्त्व होता है।

2.9.1 प्रस्तावना :-

'छन्द' शब्द 'छद्' धातु में 'असुन्' प्रत्यय लगने से बना है। 'छन्द' धातु के अनेक अर्थ हैं, जैसे प्रसन्न करना, फुसलाना, आच्छादित करना, बन्धन करना, बन्धन आदि। इस धातु के बहुत से अर्थ होने के कारण ही छन्द का अर्थ प्रसन्न करने वाली वस्तु, आच्छादन, बन्धन आदि लिया जाता है।

छन्द के अर्थ का जहाँ तक प्रश्न है, उसके दो अर्थ लिए जाते हैं – एक वैदिक अर्थ और दूसरा साहित्यिक अर्थ। वैदिक अर्थ है कि मृत्यु से भयभीत हुए देवताओं ने त्रयी विद्या में प्रवेश किया और अपने को छन्दों से आच्छादित कर लिया। इसी कारण से मन्त्रों को छन्द भी कहते हैं। इसके पश्चात् छन्द शब्द सामान्यतया वेद के अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा।

साहित्यिक अर्थ में छन्द की एक विशेष परिभाषा है। छन्द प्रभाकर में छन्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है–

''मत वरण गति यति नियम अन्तहिं समता बन्द।
जा पद रचना में मिलें भानु भनत स्वच्छन्द।''

अर्थात् जिस कविता में मात्राओं और वर्णो के क्रम, गति और गति के नियम तथा चरणान्त में समता पाई जाती है, उसे छन्दबद्ध कविता कहा जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छन्द की परिभाषा इस प्रकार दी है – 'छन्द वास्तव में बंधी हुई लय के भिन्न–भिन्न ढाँचों का योग है, जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है।'

छन्द उस रचना को कहते हैं जिसमें वर्णाक्षरों, मात्राओं, गति (लय) और यति (विराम) आदि का विशेष नियम हो। भाव यह है कि छन्द में मात्रा, वर्ण, चरण, गति, गण आदि की एक निश्चित व्यवस्था रहती है।

2.9.2 छंद परिचय :-

काव्य में छन्दों का अपूर्व महत्त्व है। सुमित्रानन्दन पन्त ने काव्य में छंदों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – ''कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत कम्पन। कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं, जिनके बिना वह अपनी ही बन्धन–हीनता में प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।'' वास्तव में छन्द कविता में रमणीयता, सजीवता और संगीतात्मकता भर देते हैं। छन्द काव्य के जीवन को वृद्धि प्रदान करते हैं। छन्दोबद्ध कविता अधिक दिनों तक जीवित रहती है। उसे कण्ठस्थ करने में सुविधा रहती है।

छन्द काव्य में संगीत उत्पन्न करते हैं और संगीत सृष्टि का अमर तत्त्व है। छन्दोबद्ध कविता अधिक प्रभावोत्पादक एवं सजीव होती है। संगीत मानव हृदय को सहज अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। छन्दों की नय मानव की हृदयतन्त्री को झंकृत कर देती है। छन्दों का रस निष्पत्ति और भावों को संप्रेषणीयता में भी बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

2.9.3 छंद का महत्त्व :-

आज कवियों का एक ऐसा समुदाय भी है, जो छन्द शास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं समझता। जहाँ यह लड़खड़ा कर गिर पड़ता है, वहाँ यह कहकर अपना पीछा छुड़ाने लगता है कि कवि किसी बंधन में नहीं रह सकता। उनको यह बात स्मरण नहीं रहती कि जीवन में कहीं–कहीं बन्धन कितने आवश्यक और मधुर होते हैं।

छन्द शास्त्र की सत्ता बहुत प्राचीन मानी जाती है। इसे कुछ लोग तो वेदों की भाँति ईश्वरीय ही मानते हैं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के नवम् मन्त्र में भी छन्द की उत्पत्ति ईश्वर से बताई गई है। इस से यह स्पष्ट होता है कि छन्द की सत्ता ऋग्वेद की तरह पुरातन है। सामवेद में भी अनेक छन्दों का विस्तार से वर्णन देखने को मिलता है। छन्द की महिमा इतनी अपूर्व है कि वेदों के अंगों (शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) में इसे भी एक आवश्यक अंग माना गया है। यहाँ तक कि छन्दों को वेदरूपी पुरुष के चरण या पाद (छन्द पादौ तू वेदस्यु) माना गया है। किन्तु ये छन्द वैदिक छन्द ही हैं, लौकिक नहीं।

लौकिक संस्कृत के पद्य साहित्य में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है, उनमें सब से प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ पिंगल ऋषि का 'छन्द सूत्र' है। इस विषय में यही ग्रन्थ सर्वमान्य माना जाता है। व्याकरण शास्त्र में जो स्थान पाणिनि के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' को प्राप्त है, वही छन्द शास्त्र में पिंगल ऋषि के 'छन्द सूत्र' को है। पिंगल ऋषि का यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय हो गया कि आगे चलकर 'पिंगल' शब्द ही छन्द शास्त्र का पर्यायवाची बन गया।

इसके उपरान्त और भी अन्यान्य ग्रन्थ लिखे गये, परन्तु कतिपय ग्रन्थों को छोड़कर अन्य ग्रन्थों का बहुत प्रचार नहीं हुआ। लोकप्रिय ग्रन्थों में दो–तीन के नाम उल्लेखनीय हैं – 1. केदार भट्टकृत वृत्त रत्नाकर 2. गंगादासकृत छन्दोमंजरी और 3. कालिदासकृत श्रुतबोध। इनकी बड़ी विशेषता यह है कि इनमें जहाँ एक ही पद्य या पद्याँश छन्द का लक्षण बताया है, वहीं उसका (छन्द का) उदाहरण भी स्वयं बन जाता है। यह शैली बड़ी लोकप्रिय हुई। विद्यार्थियों में इन ग्रन्थों का बड़ा प्रचार हुआ। आगे चल कर छन्दोविषयक ग्रन्थों के

निर्माणकर्त्ता आचार्यो ने इसका खूब स्वागत किया।

हिन्दी–साहित्य में छन्द ग्रन्थों की रचना संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर ही आरम्भ हुई। इस विषय पर बहुत से ग्रन्थ लिखे गए, जिनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित हैं –

मतिराम कृत 'छन्द सागर पिंगल', सुखदेव मिश्र कृत 'वृत्त विचार', भिखारी दास कृत 'छन्दार्णव' और 'छन्द प्रकाश' तथा पद्माकर भट्ट कृत 'छन्द मञ्जरी'। वर्तमान आचार्यो में जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कृत 'छन्दः प्रभाकर' अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त भी कुछ ग्रन्थ लिखे गए हैं। जैसे अवध उपाध्याय कृत 'नवीन–पिंगल' पुत्तनलाल कृत 'सरस–पिंगल' और पंडित रामनरेश त्रिपाठी कृत 'पद्यरचना'।

कविता के क्षेत्र में जिस प्रकार भाषा सम्बन्धी परिवर्तन दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार छन्दों के प्रयोग में भी। वैदिक युग की समाप्ति पर लौकिक संस्कृत के युग में जहाँ हमें भाषा सम्बन्धी अन्तर मिलता है, वहीं पुराने छन्दों का स्थान नए छन्दों ने ले लिया है। वही बात हिन्दी के सम्बन्ध में भी लागू हो रही है। संस्कृत काव्यों में प्रयुक्त होने वाले छन्दों का हिन्दी कविता में हमें प्रायः अभाव दिखाई देता है। सवैये, दोहे, चौपाई आदि छन्द हिन्दी साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुए।

2.9.4 छंद के तत्त्व :-

छन्द से सम्बन्ध रखने वाले विविध तत्त्व हैं, जिनके अभाव में छन्द के स्वरूप का निर्माण दुर्लभ है। छन्द को समझने के लिए इनका ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

1. वर्ण अथवा अक्षर

अक्षर दो प्रकार के होते हैं – 'स्वर' और 'व्यंजन'। छन्द–शास्त्र में व्यञ्जनों की पृथक् गणना नहीं होती। स्वरों की संख्या को ही अक्षरों की संख्या माना जाता है। जैसे किसी ने प्रश्न किया – 'ओम' इस शब्द में अक्षर है ? तो इसका उतार होगा – 'एक'। क्योंकि इसमें स्वर 'ओ' एक ही है; 'म्' व्यञ्जन है, इसकी गणना नहीं होगी। इसी प्रकार – 'अक्षर' शब्द में कितने अक्षर हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर होगा – 'तीन'। यद्यपि यहाँ (अक्षर शब्द में) अ, क्ष्, अ, र्, अ – इस प्रकार स्वर–व्यंजन मिलाकर पाँच अक्षर होते हैं, तथापि तीन ही गिने जाएंगे। क्योंकि स्वर तीन ही हैं। 'क्ष्' और 'र' व्यञ्जन हैं, उनकी गिनती नहीं होगी।

2. मात्रा

प्रत्येक कार्य के करने कुछ–न–कुछ काल अवश्य लगता है। तद्नुसार अक्षरों के उच्चारण में भी कुछ काल लगना ही चाहिए। प्रत्येक अक्षर के उच्चारण में जो काल व्यतीत होता है, उस (काल) को ही 'मात्रा' कहते हैं।

अ, इ, उ, ऋ, लृ – इन स्वरों के उच्चारण में जो काल व्यतीत होता है, उसका नाम 'एक मात्रा' है। एक मात्रा काल वाले 'हस्व' कहलाते हैं।

आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ – इन स्वरों के उच्चारण में जो काल व्यतीत होता है, उसका नाम 'दो मात्रा' कहते हैं। दो मात्रा काल वाले 'दीर्घ' कहलाते हैं।

'क्' आदि व्यञ्जनों के उच्चारण में जो काल व्यतीत होता है, उसे 'अर्धमात्रा' कहते हैं।

हम ऊपर लिख आए हैं कि एक मात्रा वाले – 'हस्व' और दो मात्रा वाले 'दीर्घ' कहलाते हैं। व्यञ्जनों की न तो एक मात्रा है, न दो मात्रा हैं, किन्तु आधी मात्रा है। इसलिए न वे 'हस्व' हैं, न 'दीर्घ'।

अक्षर–विचार के समय यह बताया जा चुका है कि छन्दःशास्त्र में व्यञ्जनों की पृथक् गणना नहीं होती, स्वर ही गिने जाते हैं। इसलिए छन्द में मात्रा भी स्वरों की ही ली जाऐंगी व्यञ्जनों की नहीं।

उपर्युक्त नियम के अनुसार किसी छन्द में मात्राओं की गिनती करते समय हस्व अक्षरों की एक–एक मात्रा और दीघ अक्षरों की दो–दो मात्राएँ गिनी जाती हैं। जैसे –

'रघुवर पद उन धरहु, सुनहु सकल बुधि वरहु।
कबहुं न परधन हरहु, सब दिन सब सुख करहु।।

इस पद्य में सब अक्षर 'हस्व' हैं, इसलिए इनकी एक–एक मात्रा गिनी जाएंगी। 'सीता रामा राधा माधौ, छुटै बाधा साधो साधो'।

इस पद्यॉंश में सब अक्षर दीर्घ हैं। इसलिए सबकी दो–दो मात्राएँ गिनी जाएंगी।

3. यती

विराम या विश्राम को यति कहते हैं। विराम या विश्राम शब्द का अर्थ है 'ठहरना'। 'छन्द' बोलते समय स्थान–स्थान पर ठहरना पड़ता है; उसी ठहरने को 'यति' कहते हैं।

4. यति-भंग

छन्द रचना के समय इस बात का सदा ध्यान रहना चाहिए कि यति किसी पद के मध्य में ने हो। जहाँ यति हो वहाँ पद समाप्त हो जाना चाहिए। पद के मध्य में यति होने से यति–भंग दोष माना जाता है। यति–भंग होने पर छन्द सुनने में लो अच्छा लगता ही नहीं है, साथ ही उसका अर्थ समझने में भी कुछ विलम्ब अवश्य होता है।

5. पद अथवा चरण

प्रत्येक छन्द कुछ पंक्तियों का समूह होता है। किसी छन्द में दो, किसी में चार और किसी छन्द में छः पंक्तियाँ होती हैं। इन्हीं पंक्तियों को 'पाद' या 'चरण' कहते हैं। खड़े होने के आधार को ही पद या पाँव कहा जाता है। छन्द की पंक्तियाँ भी उसके पद या चरण (पाँव) होते हैं, जिनके सहारे छन्द खड़ा होता है।

6. लघु और गुरु

छन्दःशास्त्र में केवल स्वरों को ही वर्ण माना जाता है। यह दो प्रकार के माने जाते हैं – एक लघु और दूसरा गुरु। इन्हें व्याकरण में क्रमशः हस्व और दीर्घ कहते हैं।

क. लघु

1. हस्व और उनसे मिले हुए व्यञ्जन लघु कहे जाते हैं। जैसे इ, उ, क, कि और य। त्य, म्य भी लघु हैं।
2. संयुक्ताक्षर से पूर्व लघु वर्ण के उच्चारण में अधिक बल नहीं पड़ता तब उसे लघु ही माना जाता है। जैसे कन्हैया, जुन्हैया, तुम्हारी, सुन्यौ आदि में क, जु, तु, सु लघु ही रहेंगे क्योंकि इनकी एक मात्रा ही मानी जाएगी।
3. अर्ध चन्द्र विन्दु वाले वर्ण भी लघु माने जाते हैं। हुँ, पफँ, गँ, कँ आदि।

ख. गुरु

1. दीर्घ स्वर और उनसे मिले हुए व्यञ्जनों को गुरु कहते हैं। जैसे आ, ई, उफ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः तथा का, की, कू, के, कै, को, ही, कं, कः। गुरु चिह 'S' है।
2. संयुक्ताक्षर से पहले का लघु अक्षर गुरु होता है। जैसे सत्य, दुष्ट, धर्म में स, दु और ध गुरु हैं।
3. विसर्ग (:) युक्त वर्ण भी गुरु माने जाते हैं। जैसे – दुःख में 'दुः' गुरु है।
4. अनरवार () युक्त वर्ण लघु होने पर भी गुरु माने जाते हैं। जैसे – इंदु में 'इं' गुरु है।
5. कभी–कभी चरण के अन्त का वर्ण लघु होने पर भी विकल्प रूप से आवश्यकतानुसार गुरु मान लिया जाता है। जैसे 'लीला तुम्हारी अति ही विचित्र' में 'त्र' को गुरु माना जाएगा।

7. गति

कविता में केवल वर्ण तथा मात्रा की नियमित संख्या पर ही विचार नहीं किया जाता है। अपितु उसमें प्रवाह भी अपेक्षित होता है, जिससे पढ़ते समय किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न न हो। इसी प्रवाह को 'गति' की संज्ञा दी जाती है।

8. तुक

छन्द के प्रत्येक चरण के अन्त में समान स्वर वाले वर्ण आते हैं, उन्हें –'तुक' कहते हैं। दोहा, चौपाई आदि तुकान्त छन्द हैं।

9. संख्या और क्रम

मात्राओं और वर्णो की गिनती को संख्या कहते हैं। कहाँ लघु वर्ण हो और कहाँ गुरु वर्ण हो, वर्णो की इस व्यवस्था को क्रम कहते हैं। भाव यह है कि छन्द में कितनी मात्राएं या वर्ण हैं, यह उनकी संख्या है। कहाँ लघु और कहाँ गुरु वर्ण हैं, यह उनका क्रम है।

10. गण

तीन वर्णो के समूह को 'गण' कहते हैं। वर्णो की लघुता और गुरुता के विचार से गणों की संख्या आठ मानी जाती है। गणों का उपयोग छन्द का लक्षण जानने में होता है। गणों के नाम और चिह्न निम्नलिखित है–

संख्या	नाम	चिन्ह	संख्या	नाम	चिन्ह
1.	यगण	1ऽऽ	2.	मगण	ऽऽऽ
3.	तगण	ऽऽ1	4.	रगण	ऽ1ऽ
5.	जगण	1ऽ1	6.	भगण	ऽ11
7.	नगण	111	8.	सगण	11ऽ

विद्यार्थियों की सुविधा हेतु गणों के नाम और लक्षण याद करने के दो सरल उपाय –

1. निम्नलिखित एक सूत्र है जिससे गणों के नाम और लक्षण ज्ञात हो जाते हैं।

सूत्र 'यमाताराजभानसलगा'

इस सूत्र में प्रैयत गण के प्रथम अक्षर का नाम आया है। जिस गण का रूप जानना हो, इसके आदि अक्षर के साथ आगे के दो अक्षर और मिला लीजिए। जैसे यगण का रूप जनना है। सूत्र में 'य' अक्षर के साथ दो अक्षर 'मा' और 'ता' है। इन्हें मिलाकर 'यमाता' हुआ अर्थात् 1ऽऽ, यही यगण का रूप है। इसी प्रकार भगण का रूप जाना जा सकता है। सूत्र में 'भा' के साथ दो अक्षर 'न' औश्र 'स' है। उन्हें मिलाकर 'मानस' हुआ अर्थात ऽ11; यही भगण का रूप है।

2. निम्नलिखित पद्य को याद करने से गणों के नाम और लक्षण जानने में बड़ी सुविधा रहती है–

त्रिगुण मगण मानो सदा, भगण आदिगुरु जान।
जगण मध्यगुरु ह्रदय धर, सगण अन्त गुरु मान।।
नगण त्रिलघु लिखते सदा, यगण आदि लघु सन्त।
रगण मध्य लघु मानते, तगण अन्त लघु कन्त।।

यदि तीनों अक्षर गुरु (ऽऽऽ) हो तो 'मगण' होता है। प्रथम अक्षर गुरु हो और शेष दोनों लघु (ऽ11) हों तो 'भगण' होता है। बीच का अक्षर गुरु हो और आदि अन्त के लघु (1ऽ1) हो तो 'गण' कहा जाता है। अन्त का अक्षर गुरु हो और पहला दूसरा लघु (11ऽ) हो तो 'सगण' कहलाता है। तीनों लघु (111) हों तो 'नगण' कहलाता है। प्रथम लघु हो और शेष दोनों गुरु (1ऽऽ) हो तो 'यगण' होता है। बीच का अक्षर लघु हो और आदि

अन्त के दोनों गुरु (ऽ1ऽ) हों तो (रगण) होता है। अन्त का अक्षर लघु हो और प्रथम एवं द्वितीय गुरु (ऽऽ1) हो तो 'तगण' माना जाता है।

2.9.5 छंद के प्रकार :-

विद्वानों ने छन्द के अनेक भेद किए हैं। प्रमुख रूप से छन्द के पाँच भेद हैं –

1. मात्रिक छन्द
2. वार्णिक छन्द
3. उभयात्मक छन्द
4. लयात्मक छन्द
5. मुक्त छन्द।

1. मात्रिक छन्द

जिन छन्दों में निश्चित और नियमित मात्राओं की संख्या के आधार पर पद रचना की जाती है, उन्हें मात्रिक छन्द कहते हैं। इन छन्दों में वर्णो की संख्या पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इन्हें 'जाति' छन्द भी कहते हैं। मात्रिक छन्द के तीन भेद होते हैं। (1) सम (2) अर्धसम (3) विषम।

(1) सम–छन्द के चारों चरणों की मात्राओं की संख्या समान होती है।

(2) अर्धसम–छन्द में प्रथम तथा तृतीय या द्वितीय और चतुर्थ चरणों की संख्या समान होती है।

(3) विषम–छन्द में चारों चरणों में मात्रा की असमानता होती है।

2. वार्णिक छन्द

जिन छन्दों में वर्णो की संख्या तथा वर्णो से बनने वाले गणों के आधार पर पद रचना की जाती है, उन्हें वार्णिक छन्द कहते हैं। इन छन्दों में मात्राओं की संख्या का महत्त्व नहीं होता है।

वार्णिक छन्द के भी मात्रिक छन्द की तरह तीन भेद हैं – (1) सम (2) अर्धसम (3) विषम। सम वार्णिक छन्द के चारों चरणों में वर्णो की संख्या समान होती है। जिनके पहले और तीसरे तथा दूसरे एवं चौथे चरण समान हों, वे अर्धसम वार्णिक छन्द होते हैं। विषय वार्णिक छन्द के चारों चरण असमान होते हैं। वार्णिक सम छन्द के दो भेद हैं – (1) साधारण और (2) दण्डक। सम वार्णिक छन्द के हरेक चरण में छब्बीस तक वर्णो की संख्या होने पर साधारण सम वार्णिक छन्द होता है। छब्बीस से अधिक वर्णे की संख्या होने पर दण्डक सम वार्णिक छन्द होता है।

3. उभयात्मक छन्द

जिस छन्द में मासिक और वार्णिक दोनों छन्दों की विशेषताएँ होगी, वह उभयात्मक छन्द कहलाता है। जैसे–

अपर को जल सूख। सूख कर उड़ जाता है।
सरदी से सकुचाय। जलद पदवी पाता है।
पिघालते रविताप। धरातल पर गिरता है।
बार–बार इस भाँति। सदा हिरता–फिरता है।

यहाँ पर 11 और 13 मात्राओं पर यति और प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ हैं। अतः रोला नामक मात्रिक छन्द है। साथ ही इस छन्द के हरेक चरण के वर्णो की संख्या भी समान है। प्रत्येक चरण में 17 वर्ण है और आठ एवं नौ वर्णो पर यति है। अतः यह दोनों प्रकार के छन्दों का समान्वयात्मक रूप है।

4. लयात्मक छन्द

इन छन्दों में मात्रा और वर्णो की संख्या का विधान नहीं होता, वरन् लय ही का विधान होता है। जैसे–

बीती विभावरी आग री।

खग–कुल कुल कुल–सा बोल रहा।
किसलय का अंचल डोल रहा।
लो ! लतिका भी भर लाई।
मधु मुकुल नबल रस–गागरी।

यहाँ पर न तो मात्राओं की संख्या समान है और वर्णो की। यहाँ तो लयात्मकता ने ही छन्द को गति प्रदान की है।

5. मुक्त या स्वच्छन्द छन्द

जिन छन्दों में किसी परम्परा या लीक से हट कर लिखा जाए, वे मुक्त या स्वच्छन्द छन्द कहलाते हैं। भाव यह है कि न इनमें वर्णो का कोई बन्धन है और न मात्राओं का जैसे –

अपने अतीत का ध्यान
करता मैं गाना था गान – भूले कुछ म्रियमाण,
एकाएक क्षोभ का अन्तर में होने संचार
उठी व्यथित उंगली से कातर एक तीव्र झंकार
विकल वीणा के टूटे तार।

यहाँ पर वर्ण और मात्रा का नियमित विधान दिखाई नहीं देता है। निराला जी ने हिन्दी में इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

2.9.6 दस छंदों का परिचय :-

दोहा

''जान विषय तेरह कला, सम शिव (11) दोहा मूल।'

लक्षण–प्रथम एवं तृतीय (विषम) चरण में तेरह–तेरह मात्राएँ तथा सम–द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ग्यारह–ग्यारह मात्राएँ होती हैं। सम–चरणों के अंत में लघु होना आवश्यक है।

उदाहरण – 'चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दा पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय।
ऽ ऽ 1 1 ऽ ऽ ऽ 1 ऽ, ऽ 1 1 1 ऽ 1 ऽ 1
13 मात्राएँ 11 मात्राएँ

सोरठा

'सम तेरह विषमेश (11), दोहा उलटे सोरठा।'

लक्षण – यह दोहे का उलटा होता है। इसके विषम अर्थात् प्रथम व तृतीय चरणों में ग्यारह–ग्यारह मात्राएँ होती है तथा विषमं चरणों (द्वितीय एवं चतुर्थ) में तेरह–तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों में जगण का निषेध है।

उदाहरण – 'जेहि सुमिरन सिधि होई, गननायक कविवर वदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।
1 1 1 1 ऽ 1 1 ऽ 1, ऽ 1 1 1 1 1 1 1 1
11 मात्राएँ 13 मात्राएँ

चौपाई

'सोलह कल, ज त अंत न भाई
राम राम, विषम विषम चौपाई।।

लक्षण – चौपाई के प्रत्येक चरण में सोलह कलाएँ (मात्राएँ) होती हैं चरण के अंत में जगण (1 ऽ 1) अथवा तगण (ऽ ऽ 1) नहीं होता। इसमें सम कल (दो या चार मात्रा का वर्ण–समुदाय) नहीं आना चाहिए। सम कल के बाद सम कल ही आना चाहिए तथा विषम कल के साथ विषम कल ही होना चाहिए। अंत में गुरु (ऽ) होने से छन्द में रोचकता आ जाती है।

उदाहरण– प्रात काल उठि कै रघुनाथा, मातु पिता गुरु नावहिं माथा।
ऽ 1 ऽ 1 1 1 ऽ 1 1 ऽ ऽ, ऽ 1 1 ऽ 1 1 ऽ 1 1 ऽ ऽ
16 मात्राएँ 16 मात्राएँ

उल्लाला

'विषमनि पन्द, सम तेरहा, कल जानो उल्लाल कर।'

लक्षण – उल्लाला के पहले और तीसरे चरण में पन्दह मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण –	हे शरणादायिनी देवि ! 'तू,	
	ऽ 1 1 1 ऽ 1 ऽ 1 ऽ ऽ 1	पन्द्रह मात्राएँ
	करती सबका त्राण है।	
	1 1 ऽ 1 1 ऽ ऽ 1 ऽ	तेरह मात्राएँ
	हे मातृभूमि, संतान हम,	पन्द्रह मात्राएँ
	ऽ ऽ 1 ऽ 1 ऽ ऽ 1 1 1	
	तू जननी तू प्राण है।।	तेरह मात्राएँ
	ऽ 1 1 ऽ ऽ ऽ 1 ऽ	

छप्पय

छप्पय 6 चरणों वाला विषय–पाद मात्रिक छन्द है। यह रोला के चार चरण और तत्पश्चात् उल्लाला के दो दल (चवार चरण) के योग से बनता है। इसलिए यह संयुक्त छन्द भी कहा जाता है। रोला और उल्लाला के गठबन्धन का दिग्दर्शन कराने के लिए वैसा कोई नियम नहीं है जैसा कुण्डलिया में है। अतः छप्पय के लक्षण का अलग से वर्णन करना अनावश्यक है। पन्द्रह–तेरह मात्रा के उल्लाला से संयुक्त छप्पय का उदाहरण देखें–

इहि बिधि सकल अन्हाई, पाइ सुख सुकृत कमाए।
पूजि सहित सनमान गान, निज जाननि आए।।
सजि सजि भूषन बसन लगे, चितवन चित दीन्हे।
तारन कौतुक–लखन–लालसा, लोचन लीन्हे।।
इमि गंगासागर धाम सुभ, जगत उजागर जस लहयौ।।
जउ सागर–रूप अनूप तउ, भव सागर बोहित भयौ।।

कुछ कवियों ने 13-13 मात्रा वाले उल्लाला का प्रयोग छप्पय में किया है जैसे –

मही दूध सम गनै, हंस बक भेद न जानै।
कोकिल काक न ज्ञान काँच मनि एक प्रमानै।।
चंदन ढाक समान, सँग रूपौ राम तोलै।
बिन बिबेक गुन दोस, मूढ कवि ब्यौरि न बोलै।।
प्रेम नेम हित चतुराई, जे न विचारत नेकु मन।
सपने हू न विलंबियै छिन तिन ढिग आनन्द घन।।

बरवै

बरवै बहुत मधुर छन्द है। प्राचीन पिंगल ग्रन्थों में धुवा या कुरंग नाम से वर्णित है, किन्तु रहीम के माध्यम से इसे लोकप्रिय बनाने और रहीम को इस छन्द की ओर आकृष्ट करने का श्रेय उनके सिपाही की नवोढ़ा द्वारा अपने पति को प्रेषित इस संदेश को है –

प्रेम प्रती कौ विरवा, चल्यौ लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यौ, मुरझि न जाय।।

रहीम इस छन्द की माधुरी पर इतना रीझे कि न केवल उन्होंने उस प्रोषित पति को उसकी प्रेयसी के पास प्रेषित कर दिया प्रत्युत इस छन्द को अपनी रचनाओं में अग्रता दी –

कवित कह्यौ, दोहा कह्यौ तुलै न छप्पय छन्द।
बिरच्यौ यहै बिचारि कै, यह बरवै रसकन्द।।

उन्होंने बहुत से श्रृंगार परक, भक्ति परक और नीति परक बरवै रचे, फारसी भाषा में भी इस छन्द का प्रयोग किया –

मीं गुज़रद ई दिलरा, बेदिलदार।
इक इक साअत हमचो, साल हज़ार।।

(प्रिय विरह में इस दिल पर ऐसी गुजरती है कि एक–एक क्षण हज़ार साल के समान लगता है।) रहीम की प्रेरणा से गोस्वामी तुलसीदास ने बरवै रामायण लिखी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र 'रत्नाकर' आदि अनेक कवियों ने भी इसे अपनाया है।

बरवै चार चरण वाला अर्ध समपाद मात्रिक छन्द है। विषम चरण में 12 और सम चरण में 7 मात्राएं होती हैं। इनकी बाँट क्रमशः 8-4 और 4-3 की है। अनेक बरवै छन्दों का परीक्षण करके यह पाया गया कि 8 से कम मात्रा की कोई बाँट नहीं बैठती, बहुधा 1-2, 2-3, 3-4, 4-5, 5-6, 6-7 और 7-8 मात्राएँ मिलकर गुरु पाई गई। इस छन्द में चरणान्त पर यति और सम चरणों में तुक होती है। विषय चरण के अंत में एक गुरु या दो 'लघु होने चाहिएं, सम चरणान्त में ताल (ऽ नन्द ऽ ऽ1) आवश्यक है।

हरिगीतिका

लक्षण–सौलह–बारह सु हरिगीतिका, अन्त में ल–ग ही रहे।

हरिगीतिका सममात्रिक शब्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 28 मात्राएं होती हैं और 16 और 12 पर यति या विराम होता है। हरिगीतिका छन्द के अन्त में लघु–गुरु का क्रम आवश्यक है।

उदाहरण – 16 12
ऽ ऽ 1 1 ऽ 1 1 ऽ ऽ ऽ, 1 1 1 ऽ 1 ऽ 1 1 ऽ

क. मेरे इस जीवन की है तु, सरस साधना कविता।
मेरे तरु की है तम कुसुमित, प्रिये कल्पना लतिका।।
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय, है तु कमल–कामिनी।
मेरे कुंज–कुटीर द्वार की, कोमल चरण गामिनी।।

ख. संसार की समर–स्थली में धीरता धारण करो
चलते हुए निज इप्ट पथ पर संकटों से मत डरो
जीते हुए भी मृतक सम रह कर न केवल दिन भरो
वर–वीर बनकर आप अपनी विघ्न–बाधाएं हरो

कुण्डलिया

लक्षण – कुण्डलिया विषम मात्रिक छन्द है। यह छः चरणों का छन्द है। दोहा और रोला छन्द के मेल से कुण्डलिया छन्द बनता है। पहले दो चरणों में दोहा छन्द तथा अन्तिम चार चरणों में रोला छन्द की रीति होती है। इस छन्द का प्रथम शब्द तथा अन्तिम शब्द प्रायः समान होता है।

उदाहरण – 13 11

ऽ 1 1 ऽ 1 1 ऽ 1 1 1 1 ऽ ऽ 1 1 ऽ 1

क. दौलत पाय न कीजिए, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि की, ठांउ न रहत निदान।।

14 13

ऽ 1 1 1 1 1 1 ऽ 1 1 1 1 1 1 ऽ 1 1 ऽ ऽ

ठांउ न रहत निदान, जियत जग में जस लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सबही की कीजै।।
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसि दिनचारि, रहत सबही के दौलत।।

ख. कोई संगी नहिं उतै, है इत ही को संग।
पथी ! लेहु मिलि ताहि तें, सब सों सहित उमंग।।
सब सो सहित उमंग, बैठि तरनी के माँही।
नदिया–नाव संजोग, फेरि यह मिलि है नाही।।
बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई।
अपनी–अपनी गैल, पथी जैहैं सब कोई।।

2.9.7 सारांश :-

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप छंदों के स्वरूप से भली–भांति परिचित हो गए होंगे। ये दस छंद आपके पाठयक्रम में निर्धारित हैं। इन्हें परिभाषा तथा उदाहरण सहित याद करें।

Type Setting:
Department of Distance Education, Punjabi University, Patiala.